* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

# कल्याण

मूल्य १० रुपये

भगवान् विष्णु

भगवान् श्रीराधाकृष्ण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
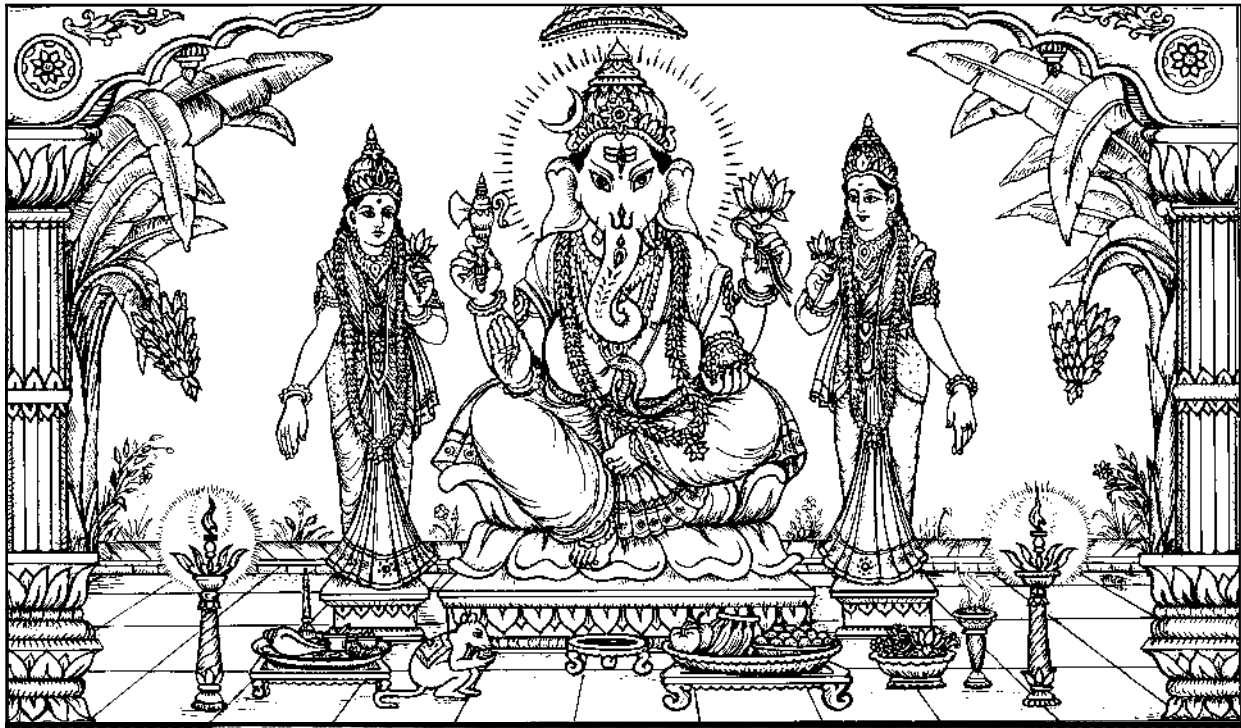
# कल्याण

यतो वेदवाचो विकुण्ठा मनोभिः सदा नेति नेतीति यत्ता गृणन्ति।
परब्रह्मरूपं चिदानन्दभूतं सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥


वर्ष ९५

गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, सितम्बर २०२१ ई०

संख्या ९

पूर्ण संख्या ११३८


## भगवान् श्रीराधाकृष्ण

कोटि-कोटि शत मदन-रति सहज विनिन्दक रूप।
श्रीराधा-माधव अतुल शुचि सौन्दर्य अनूप॥
मुनि-मन-मोहन, विश्वजन-मोहन मधुर अपार।
अनिर्वाच्य, मोहन-स्वमन, चिन्मय सुख रस-सार॥
शक्ति, भूति, लावण्य शुचि, रस, माधुर्य अनन्त।
चिदानन्द सौन्दर्य-रस-सुधा-सिन्धु श्रीमन्त॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

**कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, सितम्बर २०२१ ई०, वर्ष ९५—अंक ९**

# विषय-सूची



## चित्र-सूची



जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

**एकवर्षीय शुल्क** ₹ २५०

**पंचवर्षीय शुल्क** ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹ 3,000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹ 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

**केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित**

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

**Online सदस्यता हेतु gitapress.org** पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

**अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org** अथवा **book.gitapress.org** पर निःशुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरिः ॥

**भगवत्प्राप्ति और आत्मबोध—दोनोंमें ही मुख्य अड़चन अपने अहंकारकी है। भक्तका छिपा अहंकार उसे पूर्ण समर्पणसे बाधित करता रहता है। सारी प्राप्त परिस्थितियोंमें वह नहीं कह पाता कि जैसी भगवत्-इच्छा। सन्तोंने बताया है कि अनुकूल परिस्थितिको भगवत्कृपा और प्रतिकूलको भगवदिच्छा मानना एक कल्याणकारी अभ्यास है।**

**आत्मबोधके पथिकके लिये तो अहंकारकी चट्टान-सरीखी बाधा उसे बार-बार सांसारिक प्रपंचमें ढकेलती रहती है। वैसे ज्ञानीजनका स्पष्ट मत है कि अहंकार अज्ञानकी छायामात्र है, उसका अपना कोई अस्तित्व है नहीं। सच्चिदानन्दकी अनुभूतिके प्रवाहमें वह कहीं नहीं टिक पाता।**

**साधन-मार्ग कोई हो, गोविन्दकृपा और सन्तकृपाका आश्रय ही उसे लक्ष्य-प्राप्तितक पहुँचानेमें समर्थ होता है। अहंकारकी गाँठ मिटते ही साधक कन्हैयाकी बाँसुरी हो जाता है, उसमें जो स्वर निकलें, सब परमात्माके होते हैं।**

**—सम्पादक**

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

# कल्याण

***याद रखो***—यहाँ कुछ भी तुम्हारा नहीं है, जिस शरीरको तुम 'मेरा' नहीं, वरं 'मैं' कहते हो, वह भी तुम्हारा नहीं है। तुम्हारा होता, तुम्हारा उसपर स्वामित्व होता, तो तुम्हारे बिना चाहे, तुम्हारी उसे रखनेकी हजार इच्छा और चेष्टा होते हुए भी वह तुमसे क्यों छूटता, क्यों तुम्हें उसको छोड़कर चला जाना पड़ता?

***याद रखो***—यहाँकी कोई भी वस्तु नित्य—सदा रहनेवाली नहीं है। तुम्हारा शरीर भी। इसलिये तुम जिस वस्तुको 'मेरी' कहते हो, वह वस्तु तुम्हारे देखते-देखते नष्ट हो जाती है, तुमसे उसका वियोग हो जाता है। अथवा वह वस्तु ज्यों-की-त्यों यहाँ रह जाती है और उसे छोड़कर तुमको चल देना पड़ता है। फिर वह वस्तु तुम्हारी कैसे है?

***याद रखो***—तुम जो किसी वस्तुको, किसी प्राणीको 'मेरा' मानते हो, इसीसे तुम्हें बार-बार दुःखका अनुभव करना पड़ता है। सारा दुःख इस 'मेरेपन' में ही है। संसारमें कितने लोगोंके जवान पुत्र—कितनी तरुणियोंके युवा पति रोज मरते हैं—तुम किसके लिये रोते हो? कितने लोगोंके धन, मान प्रतिदिन नष्ट होते हैं, तुम्हें उनके प्रति सहानुभूति भी नहीं होती। ऐसा क्यों होता है? इसीलिये कि उनको तुम 'मेरा' नहीं मानते। जिनको 'मेरा' मानते हो, उन्हींके वियोगमें दुःख होता है।

***याद रखो***—यह 'मेरा' मानना तथा कहना बिलकुल भूलकी बात है। आज जिसे 'मेरा' कहकर मरे फिरते हो, कल स्वार्थमें जरा-सी बाधा आते ही वह 'पराया' हो जाता है। पुत्रमें, पितामें, भाईमें और मित्रमें शत्रुभाव हो जाता है। आज जिसको जरा-सा अनमना देखकर तुम्हें दुःख होता है, भाव बदलनेपर उसकी मृत्युमें भी दुःख नहीं होता। वरं द्वेषभाव बढ़ा हो तो सुखकी-सी अनुभूति होती है।

***याद रखो***—जबतक इस मिथ्या 'मेरा, मेरा' के जालमें फँसे रहोगे, तबतक तुम्हारे दुःखका अन्त होगा ही नहीं। तुम्हें यदि वास्तवमें सुखी होना हो, तो संसारके प्रत्येक प्राणी-पदार्थमेंसे मेरापन निकालकर एक भगवान्‌में, भगवान्‌के श्रीचरणोंमें सारा मेरापन समर्पण कर दो। एकमात्र भगवान्‌के श्रीचरणोंको ही 'मेरा' मानो। उनको अपने हृदयमें धारण कर लो, फिर तुम सदा सुखी हो जाओगे; क्योंकि भगवान् वास्तवमें तुम्हारे अपने हैं, वे नित्य हैं, उनका कभी किसी भी हालतमें वियोग नहीं हो सकता। वे सदा सुखस्वरूप हैं, अतः उनकी सन्निधिमें दुःखकी कल्पना भी नहीं आती।

***याद रखो***—अब तुम भगवान्‌को मेरा मानोगे, तब भगवान् भी तुमको अपना मान लेंगे और जैसे 'मेरी' वस्तु किसीको बड़ी प्यारी लगती है और वह सदा उसका संयोग चाहता है, उसे अपने हृदयमें रखता है, वैसे ही भगवान् भी सदा तुम्हारा संयोग चाहेंगे और तुम्हें लोभीके धनकी भाँति अपने हृदयमें रखेंगे।

***बताओ***—निर्मल सुख-शान्तिके असीम महासागर श्रीभगवान्‌के होकर भगवान्‌के हृदयमें बने रहनेसे बढ़कर जीवनकी सफलता, सिद्धि और कृतकृत्यता और क्या हो सकती है? **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

# भगवान् श्रीविष्णु

सर्वव्यापक परमात्मा ही भगवान् विष्णु हैं। यह सम्पूर्ण विश्व उनकी शक्तिसे ही संचालित है। वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी हैं। वे अपने चार हाथोंमें क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं। जो किरीट और कुण्डलोंसे विभूषित, पीताम्बरधारी, वनमाला तथा कौस्तुभमणिको धारण करनेवाले, सुन्दर कमलोंके समान नेत्रवाले भगवान् श्रीविष्णुका ध्यान करता है वह भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें वर्णन है कि भगवान् विष्णु ही परमार्थतत्त्व हैं। वे ही ब्रह्मा और शिवसहित समस्त सृष्टिके आदि कारण हैं। वे ही नारायण, वासुदेव, परमात्मा, अच्युत, कृष्ण, शाश्वत, शिव, ईश्वर तथा हिरण्यगर्भ आदि अनेक नामोंसे पुकारे जाते हैं। नर अर्थात् जीवोंके समुदायको नार कहते हैं। सम्पूर्ण जीवोंके आश्रय होनेके कारण भगवान् श्रीविष्णु ही नारायण कहे जाते हैं। कल्पके प्रारम्भमें एकमात्र सर्वव्यापी भगवान् नारायण ही थे। वे ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करके सबका पालन करते हैं और अन्तमें सबका संहार करते हैं। इसलिये भगवान् श्रीविष्णुका नाम हरि है। मत्स्य, कूर्म, वाराह, वामन, हयग्रीव तथा श्रीराम-कृष्णादि भगवान् श्रीविष्णुके ही अवतार हैं।

भगवान् श्रीविष्णु अत्यन्त दयालु हैं। वे अकारण ही जीवोंपर करुणा-वृष्टि करते हैं। उनकी शरणमें जानेपर परम कल्याण हो जाता है। जो भक्त भगवान् श्रीविष्णुके नामोंका कीर्तन, स्मरण, उनके अर्चाविग्रहका दर्शन, वन्दन, गुणोंका श्रवण और उनका पूजन करता है, उसके सभी पाप-ताप विनष्ट हो जाते हैं। यद्यपि भगवान् श्रीविष्णुके अनन्त गुण हैं, तथापि उनमें भक्तवत्सलताका गुण सर्वोपरि है। चारों प्रकारके भक्त जिस भावनासे उनकी उपासना करते हैं, वे उनकी उस भावनाको परिपूर्ण करते हैं। ध्रुव, प्रह्लाद, अजामिल, द्रौपदी, गणिका आदि अनेक भक्तोंका उनकी कृपासे उद्धार हुआ।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें वर्णन मिलता है कि लवणसमुद्रके मध्यमें विष्णुलोक अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है। उसमें भगवान् श्रीविष्णु वर्षाऋतुके चार मासोंमें लक्ष्मीद्वारा सेवित होकर शेषशय्यापर शयन करते हैं। पद्मपुराणके उत्तरखण्डके २२८वें अध्यायमें भगवान् श्रीविष्णुके निवासका वर्णन है। वैकुण्ठधामके अन्तर्गत अयोध्यापुरीमें एक दिव्य मण्डप है। मण्डपके मध्यभागमें रमणीय सिंहासन है। वेदमय धर्मादि देवता उस सिंहासनको नित्य घेरे रहते हैं। धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य, वैराग्य सभी वहाँ उपस्थित रहते हैं। मण्डपके मध्यभागमें अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं। कूर्म, नागराज तथा सम्पूर्ण वेद वहाँ पीठरूप धारण करके उपस्थित रहते हैं। सिंहासनके मध्यमें अष्टदल कमल है, जिसपर देवताओंके स्वामी परम पुरुष भगवान् श्रीविष्णु लक्ष्मीके साथ विराजमान रहते हैं।

भक्तवत्सल भगवान् श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये जपका प्रमुख मन्त्र—'**ॐ नमो नारायणाय**' तथा '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' है।

# परम सेवा

( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

एक सेवा है और दूसरी परम सेवा। दूसरेके हितके लिये भोजन-आच्छादन देना, शरीरको आराम पहुँचाना, सांसारिक सुखके लिये तन-मन-धन अर्पण करना— सेवा है। परम सेवा यह है—अपना तन-मन-धन अर्पण करके दूसरेका कल्याण कर दे। किसीको आजीविका देना लौकिक सेवा है और वह पारमार्थिक सेवा है कि जो परमात्माकी प्राप्तिमें लगे हुए हैं, उन्हें हर-एक प्रकारकी वस्तु दे, उन्हें परमात्माके नजदीक पहुँचानेमें मदद दे। कोई मरनेवाला है, उसकी इच्छा है—कोई गीता सुनाये। आप उसके पास पहुँच गये, गीता सुनायी तो यह परम सेवा है। परम सेवा वह है जिसके बाद उसको सेवाकी आवश्यकता नहीं। आपने लाख आदमियोंकी सेवा की—रुपया-औषध दिया, भोजन दिया आदि और दूसरी तरफ आपने एककी भी परम सेवा की तो यह उनसे बढ़कर है। उसके अनेक जन्मोंका अन्त करा दिया। अनन्त जन्म होनेसे उसकी रक्षा की। मृत्युका सागर सामने है।

गीतामें भगवान्ने धर्म बताया है—

**राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।**
**प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥**

(गीता ९। २)

यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयोंका राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है।

इस प्रकार भगवान् प्रतिज्ञा करके कहते हैं। अर्जुनको शंका हुई कि जब ऐसी सुगम और प्रत्यक्ष फलवाली धर्ममय बात है तो सब कोई इसका पालन क्यों नहीं करते? भगवान्ने कहा—

**अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।**
**अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥**

(गीता ९। ३)

हे परन्तप! इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते रहते हैं।

जैसे जलका सागर है, वैसे मृत्युका सागर है। समुद्रमें जलके अनन्त कण हैं। वैसे जबतक मोक्ष नहीं होगा तबतक भावीमें होनेवाली मृत्युकी संख्या नहीं है। आपके द्वारा एकका कल्याण हो गया तो वह परम सेवा है। इसके मुकाबलेमें करोड़ोंकी आजीवन सेवा भी नहीं है। जब आपको परम सेवाका मौका मिले—मरनेवाला चाहता है कि हमारा भविष्य नहीं बिगड़े, तो सेवा अवश्य करनी चाहिये। शिवका भक्त हो तो उसके गलेमें रुद्राक्षकी माला धारण कराये और विष्णुका भक्त हो तो भगवान् नारायणका नाम और गुणोंका कीर्तन सुनाये, तुलसी तथा गंगाजल दे। अन्तकालमें भगवान्का स्मरण कराये। सामने भगवान्का चित्र रखे। नेत्रोंके सामने भगवान्का स्वरूप रहे और नामका कीर्तन होता रहे तो भीतर भगवान्की स्मृति होगी। भागवत, रामायणकी पुस्तकें मुफ्तमें दे या कम कीमतमें दे। भागवत, रामायणकी कथा कहे-सुनाये या सुने। किसी प्रकार प्रचार करे। पैसा, समय, शक्ति इस काममें लगाये, जो अपने जन हों उन्हें भी इस काममें लगाये। तन-मन-धन-जन सबको भगवान्के काममें लगाये। जो दूसरोंमें भगवान्का प्रचार करता है, वह भगवान्का परम भक्त है। भगवान् कहते हैं—'हे अर्जुन! तुम्हारे और मेरे संवादका जो कोई संसारमें प्रचार करेगा, उससे बढ़कर मेरा प्यारा काम करनेवाला संसारमें न है और न होगा।'

**न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।**
**भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥**

(गीता १८। ६९)

परम सेवा करनेकी कोशिश करे। भगवान्से प्रार्थना करे। इस कामके लिये नरकमें भी जाना पड़े तो

स्वीकार करे। वह नरक भी आपके लिये वैकुण्ठसे बढ़कर होगा। एक कथा आती है—कोई भक्त यमलोकके पास होकर जा रहा था, उसे सुनायी पड़ा कि कुछ लोग रोते और चिल्लाते हैं। उसने पार्षदोंसे पूछा कि यह क्या बात है? पार्षद बोले—'महाराज! यह यमलोक है, यहाँ जीव यम-यातना भुगत रहे हैं।' अच्छा, विमान ठहराओ और कुछ नजदीक ले चलो। नजदीक पहुँचे तो लोगोंने कहा कि आपके दर्शनसे और आपका स्पर्श की हुई वायुसे हमें प्रसन्नता और शान्ति हो रही है। यमके सब शस्त्र भोथरे हो रहे हैं, यम-यातना कम हो गयी है, इसलिये आपसे यह प्रार्थना है कि आप जितनी देर अधिक ठहर सकें, उतने अधिक ठहर जायँ। वे वहीं ठहर गये। पार्षदोंने कहा—महाराज! चलिये। जवाब दिया—हम तो यहीं ठहरेंगे। पार्षदोंने कहा—आपको तो वैकुण्ठलोकमें चलना है। जवाब दिया कि भगवान्को यह संदेश कहना कि इन लोगोंकी भी वहाँ गुंजाइश होती हो तो वहाँ चलें, अन्यथा हम यहीं रहेंगे। तुम पूछ आओ। पार्षद उधर गये और इधर इन्होंने भगवान्का कीर्तन कराना शुरू किया तो भगवान् प्रकट हो गये। सबका उद्धार कर दिया। अतएव आपको मौका है। किसीकी परम सेवा करनेका मौका आये तो परम सौभाग्य मानना चाहिये।

कबीर भक्त थे और उनका लड़का भी भक्त था। कबीर लड़केको कहा करते थे कि बड़ी स्त्री माताके समान है, छोटी बहनके समान और भी छोटी हो, वह पुत्रीके समान है। एक दिन कबीरने कहा—बेटा, अब तुम्हारी १८ सालकी उम्र है, तुम्हारा विवाह करेंगे तो कमालने कहा—आप मेरा विवाह माता, बहिन या लड़की किसके साथ करेंगे? कहा भी गया है—'आधा भक्त कबीर था, पूरा भक्त कमाल।'

रैदास भगवान्के भक्त थे, वे जूते-चप्पल बनानेका कार्य करते थे। उनकी लड़की भी भक्त थी। कोई भगवान्के दर्शनके लिये रैदासके घर आया। रैदासने अपनी लड़कीसे कहा—बेटी, इसको गंगाजल पिला दो, इसे भगवान्के दर्शन हो जायँगे। जिस पानीमें चमड़ा रँगा जाता था, उसमेंसे लोटा भरकर ले गयी। चमड़ा रँगनेवाला पानी होनेसे उसने नहीं पिया, किन्तु एक दूसरा भक्त जिसकी श्रद्धा थी, उसने पी लिया तो उसे भगवान्के दर्शन हो गये, वह नाचने और गाने लगा। भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन हो गये। उसके कपड़ेपर कुछ पानी गिर गया था। वह कपड़ा निचोड़-निचोड़कर लोग पानी पीने लगे—जिसने पिया, उसको दर्शन हो गये। बादमें उस भक्तको अपनी भूल समझमें आयी तो वह रैदासजीके पास इसी प्रार्थनाके साथ पुनः गया तो रैदासजीने कहा—***'वह पानी मुलतान गया अब फेर नहीं आवना।'*** लड़की तो ससुराल गयी। उसका ससुराल मुलतान था।

यह मनुष्य-शरीर, भारतभूमि, आर्यावर्त, उसमें भी उत्तराखण्ड, भगवती गंगाका किनारा, उसकी रेणुकाका आसन, गंगाका जल पीने और स्नानके लिये मिलता है। इससे बढ़कर पवित्र और एकान्त स्थान नहीं। ऐसा मौका अपने घरपर नहीं मिलता। वटकी छायाके मुकाबले और छाया नहीं, जो शीतकालमें गरम और गर्मीमें शीतल रहती है—इससे बढ़कर कोई नहीं। वैदिक सनातन धर्म सबसे प्राचीन है। उत्तम देश, काल और जाति मिली है, ऐसा मौका पाकर फिर भी अपना कल्याण नहीं हो तो तुलसीदासजी कहते हैं—

**जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।**
**सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥**
**सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।**
**कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥**

एक विज्ञानानन्दघन ब्रह्मके सिवाय कोई नहीं। शरीर और संसारका अत्यन्ताभाव कर दे, मानो है ही नहीं और उस विज्ञानानन्दघन ब्रह्ममें तन्मय कर दे, फिर आनन्द-ही-आनन्द है। पूर्णानन्द अपार आनन्द……इस प्रकारका ध्यान निर्गुण-निराकार ब्रह्मका ध्यान है। ध्यानकालमें जो ब्रह्मका स्वरूप है, उससे विलक्षण प्राप्तिवाला स्वरूप है।

# 'ऐसो को उदार जग माहीं'

( श्रीब्रह्मेशजी भटनागर )

पट्टमहिषी सत्यभामा चित्रशालामें दर्शिकासे प्रत्येक चित्रका परिचय मनोयोगसे सुनती जाती थीं। सहसा वे एक चित्रके सामने रुकीं। चित्रको देखकर विस्मय-विमुग्ध वे हठात् बोलीं—'प्रभुके समीप बैठी हुई देवी कौन हैं, चित्रा?' मैंने इन्हें कभी नहीं देखा था। साथ ही यह चरणोंमें कौन बैठा है?

'सच कहती हैं, महारानी! आपने इन्हें कभी नहीं देखा होगा। ये द्वारकाधीश नहीं हैं, ये तो मर्यादापुरुषोत्तम अयोध्यानरेश भगवान् श्रीराम हैं और इनके वामांगमें सुशोभित ये महारानी सीता हैं। इनके चरणोंमें अर्चना करते हुए श्रीरामके अनन्य सेवक अंजनीनन्दन हनुमान् हैं।'

'मैं विस्मित थी, वंशीधारीको धनुषधारीके रूपमें देखकर; किंतु कितनी अभिन्नता है दोनोंके रूपमें—वही गठन, वही कुण्डलोंकी मधुर हिलन, वही अधरोंपर क्रीडा करती हुई मृदु मुसकान, दीनजनोंपर कृपादृष्टि निक्षेप करते हुए वे ही राजीवनयन, वही विशाल वक्ष:स्थल, वे ही अभय प्रदान करनेवाले वरदहस्त··· कहते-कहते महारानी ध्यानावस्थित हो गयीं और उनका स्वर अवरुद्ध हो गया।'

'आप भी तो महारानी सीताकी ही अनुहार हैं। वही रूप-लावण्य, वही सुडौल अवयव, अरुण कपोल, खंजनके-से नेत्र, जगज्जननीके पदसे गौरवान्वित, उदारहृदया, अधरोंपर थिरकनेवाला अपूर्व माधुर्य—सभी कुछ तो महारानी सीताके अनुरूप ही है।' महारानीके कर्ण-कुहरोंमें दर्शिकाके शब्द पड़े। वे चेतन हो गयीं और उन्मीलित नेत्र किये हुए सुनने लगीं। महारानी बोलीं—'मिथ्या है।'

चित्रा मुसकरायी और बोली—'मेरी दृष्टिसे देखिये।'

'कहीं भी तो संगति नहीं लगती, चित्रा!' फिर विषय बदलती हुई हनुमान्की ओर संकेत करती हुई सत्यभामा बोलीं—'मारुतनन्दनका सिन्दूर-वर्ण क्यों है, चित्रा?'

'बड़ी सुन्दर कथा है, महारानी! प्रभात हो रहा था। दिनेशकी स्वर्णिम किरणें महारानी सीताके प्रकोष्ठमें प्रकाश बिखेर रही थीं। महारानी सीता राघवेन्द्र सरकारकी अर्चना करके निकलीं। अंजनीनन्दनने चरणोंमें अभिवादन किया। महारानीने आशीर्वाद दिया 'प्रभुके प्रेम-भाजन बनो आञ्जनेय!' पवनसुत गद्गद होकर माँके मुखकी ओर निहारने लगे। उनकी माँगमें सिन्दूरकी लाली देखकर वे चकित रह गये और पूछ बैठे।

'माँ! एक जिज्ञासा है।'

'क्या?'

'अनुचित न समझें तो कहूँ। माँगमें लाली कैसी माँ!'

'तुम समझ सकोगे ब्रह्मचारी?' महारानी मुसकरायीं। 'यह नारियोंके सौभाग्यका प्रतीक है। प्रभु इससे प्रसन्न होते हैं।'

'फिर कहो, माँ! प्रभु इससे प्रसन्न होते हैं?'

'हाँ, प्रभु इससे प्रसन्न होते हैं।'

'प्रसन्न होते हैं, प्रसन्न होते हैं····· कहते हुए मारुति भागे।'

दूसरे दिन वे प्रभुकी सेवामें उपस्थित हुए। युगल-सरकार उनके रूप-वैचित्र्यको देखकर हँस पड़े—'यह कैसा वेष बनाया है, बजरंगी!'

'प्रभु! धृष्टता क्षमा करें। स्वभावसे चंचल कपिमें अनुकरणकी प्रवृत्ति होती है। वन्दनीया माँकी माँगमें सिन्दूर देखकर मेरे मनमें ऐसी स्फुरणा हुई कि जब माँकी इतनी-सी सिन्दूर-लालिमासे प्रभु प्रसन्न होते हैं, तब समस्त शरीरमें लगानेसे तो प्रभुका असीम अनुग्रह मिल सकेगा। अत: यह चपलता दाससे हो गयी है, मेरे नाथ!' मारुतनन्दन प्रभुके चरणोंमें गिर गये।

भगवान् उनके भोलेपनपर मुसकराये और अपना वरदहस्त उनके मस्तकपर रखते हुए बोले—'मुझे तुम्हारा यह वेष विशेष रुचिकर प्रतीत हो रहा है।'

'जैसी मेरे प्रभुकी इच्छा। हनुमान् बोल उठे।'

मैथिलीने भी मुसकराते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया—

**राम रसायन तुम्हरे पासा। सदा रहो रघुपति के दासा॥**

हनुमान्का मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और वे गद्गद स्वरमें बोले—'मैं धन्य हो गया, माँ! आशीर्वाद दो, जननी'—

**सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥**

महारानी सत्यभामा खिलखिला उठीं—'बड़ी सुन्दर कथा है, चित्रा!'

वन्दनाको देखकर सत्यभामाने कहा—'क्या है, वन्दना।'

'कुमार जाग गये हैं, महारानी!'

'आती हूँ, शेष चित्र फिर देखूँगी, चित्रा!' कहकर महारानी चली गयीं।

× × ×

महारानी रुक्मिणीदेवी मन्दिरसे लौटीं। रथसे उतरकर वे महारानी सत्यभामाके प्रकोष्ठकी ओर चली गयीं। सत्यभामाने चरणस्पर्श किया और उनका हाथ पकड़कर वे उन्हें अपने कक्षमें ले गयीं तथा 'कुशल तो है, जीजी!' मुसकुराते हुए बोलीं।

'चिन्ता न करो। तुमसे गोपनीय बात कहने आयी हूँ, सत्यभामा!' सत्यभामा उत्सुकतासे सुनने लगीं।

'महाराज प्रगाढ़ निद्रामें थे। मुझे एक विचित्र-सा नाद सुनायी दिया। मैं उसे ध्यानसे सुनने लगी। उनके रोम-रोमसे 'हनुमान्', 'हनुमान्' स्वर निकल रहा था। मैं स्तब्ध-सी रह गयी। जब प्रभु जाग्रत् हुए, तब उन्होंने अपना विचित्र स्वप्न सुनाया।

वे कहने लगे—'लंकाधीश रावणपर विजय प्राप्त करनेके बाद श्रीराम-दलमें हर्षोल्लासके साथ जय-घोष गूँज रहा था। हास्य और विनोदके वातावरणमें राघवेन्द्र वानरों तथा भालुओंको यथायोग्य पुरस्कार दे रहे थे। तभी जनकनन्दिनीने अपनी मणियोंकी माला गलेसे उतारकर अंजनीनन्दनके गलेमें पहना दी। माँका अमूल्य उपहार पाकर वे फूले न समाये। कुछ व्यक्तियोंने उन्हें ईर्ष्यासे देखा और कुछने उनके भाग्यकी सराहना की।' कुछ क्षण पश्चात् अंजनीनन्दनने मालाको ध्यानसे देखा, वे निराश होकर एक-एक माणिकको दाँतसे तोड़ते और खीझकर फेंक देते। उपस्थित समुदायमें रोषकी भावना फैल गयी। माँकी अमूल्य मालाको विकृत करना उन्हें रुचिकर न लगा।

'ब्रह्मचारी हैं। ज्ञानिनामग्रगण्य भले ही हों, किंतु कपि-संस्कार नहीं जा सकता, यह जगज्जननी मैथिलीका अपमान है।' विभीषण यह अनर्थ न देख सके। उन्होंने आगे बढ़कर मारुतिका हाथ पकड़ लिया—'यह क्या कर रहे हो, बजरंगी? बहुमूल्य माला क्यों तोड़ रहे हो?'

'बहुमूल्य आपके लिये होगी, लंकेश! मेरे लिये तो यह व्यर्थ है।' सबने आश्चर्य एवं जिज्ञासासे उनकी ओर देखा।

'जिसमें राम-नाम अंकित न हो, वह मेरे लिये अनुपयोगी है। जिस क्षण मेरे श्रवण प्रभु-लीला सुननेसे, मेरी रसना प्रभु-नाम जपनेसे, मेरे नेत्र प्रभु-दर्शन करनेसे तथा मेरा हृदय प्रभुके वाससे वंचित हो, हनुमान् जीवित न रहेगा' कहकर उन्होंने नखसे अपने वक्षःस्थलको विदीर्ण कर दिया। सबने आश्चर्यचकित हो उनके हृदयमें मैथिलीसहित श्रीराघवेन्द्रके दर्शन किये। वायुमण्डलमें 'परमभक्त अंजनीनन्दनकी जय! अनन्य श्रीरामोपासक हनुमान्की जय!' का घोष गूँजने लगा।

इस प्रकार कहते-कहते प्रभु गम्भीर हो गये। आर्द्रवाणीसे फिर बोले—'विद्या-बुद्धि-विवेकके आगार, अजेय बल-पौरुषके भण्डार, सर्वसमर्थ एवं सर्वशक्तिमान् होते हुए भी निरीह तथा निरभिमान इस संसारमें केवल हनुमान् ही हैं। ऐसे परम सन्त-निःस्वार्थ सेवकसे मिलनेकी उत्कट इच्छा हो रही है, देवि!'

'बाधा क्या है, प्रभु?'

वह अनन्य रामोपासक है, मुझे इस रूपमें कैसे स्वीकार करेगा?

भक्तोंके इच्छानुसार अमित रूप, नाम तथा शरीरधारीको धनुर्धारी बननेमें क्या विलम्ब लगेगा?

प्रभु मुसकराये—'समस्या मैथिलीकी है।'

'वह तो महारानी सत्यभामा हैं ही। मैथिलीके पूर्णतया अनुरूप हैं।'

तभी सत्यभामाके कानोंमें चित्राके शब्द गूँज उठे—'आप भी तो महारानी सीताकी अनुहार हैं।' वे मुसकरा उठीं।

'अब तुम शीघ्र प्रस्तुत हो जाओ—प्रभु आते ही होंगे।' कहती हुई महारानी रुक्मिणी चली गयीं।

सत्यभामा दर्पणके समक्ष शृंगार करने लगीं। वे दर्पणमें अपनी छवि देखकर मुग्ध हो गयीं और उन्होंने रूपगर्विता नायिकाकी भाँति अपने कक्षमें चारों ओर

देखा। उसी समय वन्दनाने अभिवादन करके प्रभुके आनेकी सूचना दी।

दासियाँ प्रभुके मार्गमें पुष्प बिखेरती आ रही थीं। कक्षके द्वारपर महारानी सत्यभामाने प्रभुकी आरती करके उन्हें सिंहासनपर आसीन कराया।

'अरे! तुम तो वास्तवमें मैथिली बन गयी।'

सत्यभामाने मुसकराते हुए प्रभुकी ओर देखा। वे श्रीरामरूपको देखकर मुग्ध हो गयीं, देखती ही रह गयीं और बोलीं—'राघवेन्द्र सरकारके चरणोंमें सत्यभामा प्रणाम करती है।'

प्रभुने मुसकराकर कहा—'सत्यभामा नहीं, मैथिली कहो, देवि!' वे मुसकरायीं। द्वारपर खड़खड़ाहट हुई। प्रभुने कहा—'सम्भव है, हनुमान् आ गया।'

द्वार खुला। महारानी सत्यभामा करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी, मस्तकपर रत्नजटित मुकुट, विशाल स्कन्धपर मूंजका यज्ञोपवीत, करोंमें वज्र तथा ध्वजा धारण किये हुए और कंचन-वर्णसे सुशोभित हनुमान्‌को देखकर प्रसन्न हो गयीं।

'पाहि माम्, पाहि माम्' कहते हुए हनुमान् प्रभुके चरणोंमें गिर गये।

'सकुशल हो, महावीर!'

'प्रभो! कुशलता श्रीचरणोंमें है।'

सहसा उन्होंने चारों ओर देखा।

'क्या देख रहे हो बजरंगी?'

'माँ कहाँ हैं, प्रभो?'

सत्यभामाकी ओर संकेत करते हुए प्रभुने कहा—'मैथिलीको भूल गये, हनुमान्!'

'क्षमा करें, प्रभु' मस्तक नीचा करके हनुमान्‌ने कहा—'मुझे इनमें वात्सल्यमूर्ति माँके दर्शन नहीं हो रहे हैं।'

सत्यभामा संकोचसे गड़ गयीं। उनकी आत्मा ग्लानिसे गलने-सी लगी। वे उठकर अपने कक्षमें चली गयीं। क्रोधसे उनका मुख रक्त-वर्ण हो रहा था। तभी उन्हें ऐसा लगा, मानो प्रभु खड़े हुए समझा रहे हैं—'दुखी हो, सत्यभामा! मैं अनुभव कर रहा था, तुम्हें अपने रूपका अभिमान बढ़ता जा रहा है। अभिमान दुर्गतिका कारण होता है। मैं अपने जनमें गर्वके बिरवेको पनपते नहीं देख सकता। तुम्हारे अभिमानको समूल नष्ट करनेके लिये ही मैंने यह योजना बनायी थी। सच मानो, सत्यभामा! तुम अपनी स्वाभाविक वेषभूषामें अत्यधिक सुन्दर लगती हो। उठो, सत्यभामा! परम भक्त हनुमान्‌के दर्शन करो। मुझसे बढ़कर मेरे दास होते हैं। हनुमान्‌की भक्तिसे ही मुझे प्राप्त किया जा सकता है।'

वे क्रोधावेशसे मुक्त हो चुकी थीं। 'धन्य हैं प्रभु! मुझे उबार लिया।' वे आभूषण पहनने लगीं।

हनुमान्‌को अपनी भूल ज्ञात हुई। उनका मन पश्चात्तापसे भर गया। प्रभुकी अनन्य प्रियाकी कोमल भावनाको आहत करके मैंने घोर अपराध किया है। इसके लिये प्रभु भी मुझे कभी क्षमा नहीं करेंगे। तभी प्रभुने पुकारा—'हनुमान्!'

'मेरे प्रभु, करुणामय! इस दीन, मलीन, साधनहीन अज्ञ कपिको कैसे बिसरा दिया था, मेरे नाथ?' हनुमान्‌जी कातर स्वरमें कहने लगे।

'तुम्हें भीतर आनेसे किसीने निषेध तो नहीं किया?'

'एक अशिष्ट व्यक्तिसे मैंने प्रवेश करनेकी अनुमति माँगी, किंतु उसने कर्कश स्वरमें कहा—'प्रभुकी आज्ञाके बिना तुम्हारा प्रवेश नहीं हो सकेगा।' मैंने समझाया—'मैं हनुमान् हूँ, मुझे प्रभुके दर्शनसे वंचित न करो।' मेरी अनुनय-विनयका उसपर कोई प्रभाव नहीं हुआ, अतएव उसे अपनी लांगूलमें बाँधकर यहाँ लेता आया हूँ।'

प्रभु मुसकराये—'सुदर्शनको मुक्त कर दो, हनुमान्! ये अब अपने बलाभिमानका प्रायश्चित्त कर चुके हैं, अतुलितबलधाम!'

हनुमान्‌ने सुदर्शनको मुक्त कर दिया। वे हनुमान्‌के चरणोंमें गिर पड़े और बोले—'मेरी धृष्टता क्षमा कर दें।'

मुसकराते हुए हनुमान्‌ने सुदर्शनको छातीसे लगा लिया और कहा—'क्षमा तो मुझे अपने दुर्व्यवहारके लिये माँगनी चाहिये।'

अरे हाँ हनुमान्! गरुड़ तुम्हारे साथ नहीं आये?

नहीं, प्रभु! मैं ध्यानमें माँके सहित आपके साक्षात्कारका आनन्द ले रहा था कि कड़कड़ाहटसे मेरा ध्यान भंग हो गया। मैंने नेत्र खोले तो सामने गरुड़ दिखायी दिये। उन्होंने अभिवादन किया। मैंने पूछा—'कैसे आये, पक्षिराज?'

'द्वारकाधीश प्रभुने आपको बुलाया है।' गरुड़ बोले।

'मेरे हृदयमें द्वन्द्व उठा, 'द्वारकाधीशसे मुझे क्या प्रयोजन?' मैं मौन रहा। थोड़ी देर बाद ही मेरी हृत्तन्त्री झंकृत हो उठी—'साकेतविहारी राघवेन्द्र सरकार द्वारकामें स्मरण कर रहे हैं।' प्रभुकी असीम अनुकम्पाका ध्यान करके मैं आनन्द-विह्वल हो गया। प्रभु अपने जनकी सुधि लेते हैं। मैंने प्रार्थना की—'गरुड़! प्रभुसे निवेदन करना मैं शीघ्र आ रहा हूँ।'

'वे बोले—'प्रभुकी आज्ञा है, आपको तुरंत ही अपनी पीठपर आरूढ़कर उनके समीप ले चलूँ।''

'मैं पूजा समाप्त करते ही आ जाऊँगा।' मैंने विनम्र स्वरमें कहा।

'नहीं, आप मेरे साथ शीघ्र चलें। विलम्ब होनेसे रुष्ट होंगे प्रभु।'

'मेरा आग्रह व्यर्थ हुआ। वे मुझे शीघ्र ले जानेका दुराग्रह करने लगे।' 'तुम नहीं मानोगे, गरुड़!' कहकर मैंने उन्हें उठाकर पर्वतसे नीचे फेंक दिया। मेरा मन साधनामें नहीं लगा।

इतनेमें ही पीड़ासे कराहते हुए गरुड़ आ गये और प्रभुको अभिवादन करते हुए बोले—'श्रीहनुमान् अभी आ रहे हैं।' किंतु हनुमानको यहाँ उपस्थित देखकर वे संकुचित हो गये। उनका तीव्रगामिताका घमंड चूर हो गया।

'हनुमान्‌को आये हुए पर्याप्त समय हो गया, पक्षिराज! किंतु तुम्हें विलम्ब कैसे हुआ?'

'मेरे निरन्तर दुराग्रहसे लाघवसे उठाकर सागरमें फेंक दिया। पीड़ासे मेरी अस्थियाँ चरचरा उठीं। मैं सागरमें मूर्च्छित हो गया। चैतन्य होते ही आया हूँ, प्रभो!'

हनुमान्‌ने करबद्ध हो गरुड़से प्रार्थना की—'मेरे इस उद्दण्ड व्यवहारको क्षमा कर दो, प्रभुके प्रिय वाहन! मैं इस धृष्टताके लिये लज्जित हूँ।' वे चरण छूनेको झुके ही थे कि गरुड़ने बीचमें रोककर कहा—'क्षमाप्रार्थी तो मैं हूँ, अंजनीनन्दन! मेरे तीव्रगामिताके अभिमानको चूरकर आपने मुझे उबार लिया।'

अपने सहज स्वरूपमें महारानी सत्यभामा बाहर आ गयीं। उनका मुख शान्त था। पवनपुत्र दौड़कर उनके चरणोंमें गिर पड़े—'क्षमा कर दो माँ! अपने अशिष्ट एवं अभद्र व्यवहारपर मैं लज्जित हूँ।'

माँने हनुमान्‌के मस्तकपर हस्त रखकर वात्सल्यभरे स्वरमें कहा—'पश्चात्ताप न करो, हनुमान्! प्रभुकी ऐसी ही इच्छा थी।'

'आशीर्वाद दो, माँ! प्रभुके चरण-कमलोंमें मेरा प्रेम सतत बढ़ता रहे।'

'ऐसा ही होगा हनुमान्!'

माँने मुसकराते हुए कहा—'एकमात्र तुम्हीं हो हनुमान्! जिनपर प्रभु अनन्य कृपा एवं दुलार करते हैं। प्रभु निरन्तर तुम्हारा ही ध्यान करते हैं।'

माँने आगे कहा—'हनुमान्! तुम्हारी कृपासे अष्टसिद्धियाँ प्राप्त हो जायँ, तुम्हारे भजनसे प्रभु मिलें और तुम्हारे स्मरणमात्रसे जन्म-जन्मके दुःख, रोग, शोक, संकट तथा विघ्नोंका नाश हो।'

हनुमान्‌ने कृतज्ञताके स्वरमें कहा—'मैं कृतकृत्य हो गया, माँ! आपका स्नेह पाकर।'

'हनुमान्!' माँने आग्रह किया—'प्रभुके दर्शनके लिये सदा आते रहोगे न?'

'हम सब द्वारकावासी कृतार्थ हो जायँगे, पवनपुत्र!' गरुड़ने अनुनय की।

'मेरी भी यही इच्छा है।' प्रभु बोले।

'मेरे प्रभु!' रो पड़े हनुमान्, उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी। कुछ क्षण पश्चात् वे बोले—'इतनी करुणा, भक्तवत्सलता, ऐसी जनहितकातरता और ऐसा अनुग्रह आपके अतिरिक्त दीनोंपर कौन कर सकता है। मुझे भय था, प्रभुके परम प्रिय भक्तोंके प्रति अमर्यादित अपमानजन्य व्यवहार करके मैंने ऐसा जघन्य अपराध किया है, जिसके लिये प्रभु मुझे अवश्य दण्डित करेंगे, किंतु धन्य हैं, मेरे नाथ कैसे क्षमाशील हैं, जो अपने जनकी भयंकर त्रुटियोंकी उपेक्षा करके सात्त्विक भावोंकी अर्चनापर कोमलचित्त कृपालु रघुनाथ रीझ जाते हैं! अपने जनपर अहेतुकी कृपा करनेवाले कितने उदार हैं, मेरे प्रभु!' प्रभुकी अगाध भक्तवत्सलताका स्मरण करके उनके नेत्रोंसे अश्रु-वर्षा होने लगी। वे झूमझूमकर गा उठे—

**ऐसो को उदार जग माहीं।**
**बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥**

# श्रीराधा

( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार )

अनादिकालसे साधनाकी दो धाराएँ हैं। एक धारामें 'अहम्'के परिणामकी चिन्ता है, 'अहम्'के मंगलकी भावना है। दूसरी धारामें 'अहम्'का सर्वथा समर्पण है। इन्हीं दोनों धाराओंके अनुसार अध्यात्म-राज्यकी सारी साधनाएँ चलती हैं। संक्षेपमें जिस धारामें कर्मकी और ज्ञानकी प्रधानता है, उस धारामें आत्मपरिणामकी चिन्ता है; 'अहम्'के मंगलकी भावना है। भगवान्ने गीताके अन्तिम उपदेशमें कहा है—

**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥**

यह बड़ा सुन्दर, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपदेश भगवान्का है। परंतु इस उपदेशमें 'पापनाशका प्रलोभन' है। 'तुम्हारे पापोंका नाश मैं कर दूँगा, तुम चिन्ता न करो।' पापका भय है, नहीं तो, चिन्ताकी कोई आवश्यकता नहीं। साधक समझता है कि मेरे पापका नाश कैसे होगा, मेरा मंगल कैसे होगा। 'अहम्'के मंगलकी भावना है, इसमें 'अहम्'के परिणामकी चिन्ता है।

इससे आगे और बढ़ते हैं तो कहते हैं कि 'हमारा बन्धनसे छुटकारा हो जाना चहिये; मुक्ति मिल जानी चाहिये। किसको? जिसे बन्धन है उसको। मुक्तिकी चाहमें 'अहम्' की अपेक्षा है ही। बन्धनकी कल्पनामें यह सहज बात है कि 'मैं' बन्धनमें हूँ, मुझे मुक्ति मिले।' यहाँ मोक्षकी इच्छा है जिसे 'मुमुक्षा' कहते हैं। इसका अर्थ यही होता है कि उसे बन्धनकी तीव्र वेदना है और वह बन्धनसे छूट जाना चाहता है। 'मैं बन्धनमें हूँ और मैं छूट आऊँ' यह जो बन्धनका बोध है और 'अहम्'के मंगलकी आकांक्षा है—इसमें भरी है। इसीसे जहाँ कोई प्रलोभन नहीं, जहाँ ऐसी कोई भावना नहीं, इसके बादकी स्थिति बतलाते हैं। कुछ नयी-सी बातें मालूम होंगी। क्षमा कीजियेगा—

**ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।**
**समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥**

यहाँ 'पापनाशका प्रलोभन' नहीं है। यहाँ सब साधकके मनमें नहीं है कि मुझे पाप लगेगा। यहाँ तो वह 'ब्रह्मभूत' है, 'प्रसन्नात्मा' है। उसे न सोच है, न उसे आकांक्षा है। स्वयमेव अपने-आप भगवान् आते हैं, भगवान्की भक्ति प्राप्त होती है। 'मेरी परा भक्ति प्राप्त करता है' यह दूसरे स्तरकी चीज है—'**मद्भक्तिं लभते पराम्**'। पर यहाँ भी भक्ति-लाभकी आकांक्षा है। जहाँ कोई आकांक्षा नहीं, जहाँ कोई वासना नहीं, जहाँ 'अहम्'का सर्वथा विस्मरण—समर्पण है, जहाँ केवल प्रेमास्पदके सुखकी स्मृति है और कुछ भी नहीं। यह एक विचित्र धारा है और इस धाराका मूर्तिमान् रूप ही श्रीराधा हैं। ये जितनी और सखियाँ हैं, जितनी और गोपांगनाएँ हैं, ये तो राधाव्यूहके अन्तर्गत आती हैं और राधा इस भावधाराकी मूर्तिमती सजीव प्रतिमा हैं। इसीलिये राधाका आदर्श—राधाका जीवन 'ब्रह्मविद्या'के लिये भी आकांक्षित है। यह कथा आती है—पद्मपुराणके पातालखण्डमें। ब्रह्मविद्या स्वयं तप कर रही हैं। उनको तप करते देखकर ऋषि पूछते हैं कि 'आप कौन हैं, आप क्यों इतना कठिन तप कर रही हैं?' ब्रह्मविद्याने कहा, 'मैं ब्रह्मविद्या हूँ।' ऋषियोंने पूछा, 'आपका कार्य?' ब्रह्मविद्याने कहा कि 'सारे जगत्को अज्ञानसे मुक्त करके ब्रह्ममें प्रतिष्ठित कर देना—यह मेरा कार्य है।' सारे जगत्के अज्ञान-तिमिरको सर्वदाके लिये हर लेना यह उनका स्वाभाविक कार्य है—प्रकाश है। ऋषियोंने पूछा—'तो फिर आप तपस्या क्यों कर रही हैं?' तो वे यह न कह सकीं कि 'राधाभावकी प्राप्तिके लिये।' उनकी यह कह सकनेकी भी हिम्मत न पड़ी। उन्होंने कहा—'गोपीभावकी प्राप्तिके लिये।' गोपीभाव बड़ा विलक्षण है। श्रीराधामाधवके सुखकी सामग्री एकत्र कर देना जिनके जीवनका स्वभाव है—वे हैं गोपी। अपनी बात कहीं नहीं है, जगत्की स्मृति नहीं है, ब्रह्मकी परवा नहीं है, ज्ञानका प्रलोभन नहीं है।

अज्ञानका तिमिर तो है ही नहीं। वहाँ केवल एक ही बात है, दूसरी चीज है ही नहीं। गोपी केवल एक ही बातको लेकर जीवित रहती है कि वह राधामाधवको कैसे सुखी देख सके। बस! इसी गोपीभावमें इस प्रकारका प्रलोभन है, इस प्रकारका आकर्षण है कि ब्रह्मविद्या ही नहीं, स्वयं भगवान् इस भावकी प्राप्तिके लिये, इस रसका आस्वादन करनेके लिये,इस प्रकारकी लीला करनेको बाध्य होते हैं, जिससे इस परम पुनीत, परम आदर्श प्रेमराज्यकी कुछ थोड़ी-सी झाँकी जगत्‌में होती है!

तो यह श्रीराधा-भाव क्या है? भगवान्‌के स्वरूपका एक भाव है—आनन्द। यह अंश नहीं, आनन्दांश नहीं। सत् भगवान्‌का स्वरूप, चित् भगवान्‌का स्वरूप, आनन्द भगवान्‌का स्वरूप—तो भगवान्‌का जो स्वरूपानन्द है, उस स्वरूपानन्दका वैष्णव-शास्त्रोंमें नाम है—‘**आह्लादिनीशक्ति**’। इस आह्लादिनीका जो सार है, जो सर्वस्व है, उसे कहते हैं ‘प्रेम’। उस प्रेमका जो परम फल है, उसे कहते हैं ‘भाव’ और वह भाव जहाँ जाकर परिपूर्ण होता है, उसे कहते हैं ‘महाभाव’। और यह महाभाव ही ‘श्रीराधा’ हैं।

इसके अनेक अंग हैं—रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव। ये सभी आह्लादिनी-शक्तिके ही भाव हैं। इन सारे भावोंका जहाँ पूर्णतम प्रकाश, अनन्ततम प्रकाश है—वह श्रीराधा-भाव है। अब श्रीराधा क्या हैं? यह कोई नहीं बता सकता कि वे क्या हैं। राधा हैं—श्रीकृष्णका सुख। राधा हैं—श्रीकृष्णका आनन्द। राधा न हों तो श्रीकृष्णके आनन्दरूपकी सिद्धि ही नहीं है। श्रीकृष्णके आनन्दका नाम है—‘राधा’। इस राधाके अनेक स्तर हैं, अनेक स्वरूप हैं, अनेक विकास हैं।

श्रीराधा-भावमें दोषदर्शन भी है, राधा-भावमें गुणदर्शन भी है, राधा-भावमें निर्गुणकी झाँकी भी है और राधाभाव इन सबसे परेकी अचिन्त्य वस्तु भी है। जिसका जैसा भाव है, वह अपने भावके अनुसार ‘राधा’ के दर्शन करता है। अपने साधनकी दृष्टिसे देखता है। परमोच्च प्रेमराज्यकी आदर्श महिमा यदि कहीं प्रकट हुई है, तो वह राधाभावमें हुई है। राधाभावका संकेत श्रीमद्भागवतमें भी है। राधाभाव नित्यभाव है। जैसे राधा नित्य हैं, वैसे ही राधाका भाव नित्य है, वैसे ही उनका रास नित्य है। इसमें किस तरहकी साधना किस प्रकारसे करनी पड़ती है, तो यह साधन-राज्यकी एक ऐसी विलक्षण धारा है, जिस धारामें किसी भी दूसरे प्रकारका, इसके साथ वैसा सम्पर्क नहीं है, जो इसको प्रभावित कर सके। इसीलिये राधाभावकी साधनावाले जो लोग हैं, वे इस भावको ज्ञानकर्मादिसंस्पर्शशून्य कहते हैं। उनके संस्पर्श-लेशका भी अभाव है। तो क्या यहाँ अज्ञान है? तो क्या इस साधनामें किसी क्रियाका सर्वथा अभाव है? न तो इसमें क्रियाका सर्वथा अभाव है और न यहाँपर ज्ञानका अभाव है तथा न यहाँपर अज्ञानकी सत्ता है। इसीलिये यह इस प्रकारका विलक्षण भाव है कि जहाँ पूर्ण ज्ञान होते हुए भी ज्ञानकी सत्ता नहीं है, जहाँ जीवनमें एक-एक क्षण, एक-एक पल प्रेमास्पदकी सेवामें रममाण होते हुए भी क्रियाका सर्वथा अभाव है। क्षणभरके लिये भी अवकाश नहीं है—प्रेमीको। वह सोता नहीं, अलसाता नहीं, भागकर जंगलमें जाता नहीं, वह घरमें रमता नहीं, परंतु उसको अवकाश नहीं। पर उसके पास कर्म-संश्रव-लेश नहीं। कर्म-संस्पर्शशून्य जीवन है। राधाभावमें कर्मसंस्पर्शशून्यता है और ज्ञानसंस्पर्शशून्यता है। जो ज्ञान अज्ञानको मिटाता है,जो ज्ञान किसीको प्रभावित करता है, जिस ज्ञानसे किसी ज्ञानकी सत्ताकी सिद्धि होती है, वह ज्ञान यहाँ नहीं है। ज्ञानकी असत्ता है—पर पूर्णतम ज्ञान है। कर्मकी असत्ता है, पर प्रेमास्पदकी सेवारूप कर्ममय जीवन है। कर्म नहीं, ज्ञान नहीं। ज्ञानकर्मादि-संस्पर्शशून्य जो केवल प्रेमभाव है, वही महाभाव है और उसी महाभावकी मूर्तिमती प्रतिमा श्रीराधा हैं। यह राधाका एक आदर्श स्वरूप है—संक्षेपमें।

# तुम अपना कर्तव्यपालन करनेके लिये आये हो

( डॉ० श्रीगोपालप्रसादजी 'वंशी' )

एक था राजा। बड़े परिश्रमसे राज्य करता था, बहुत ध्यान रखता था प्रजाका; परंतु ध्यान रखते हुए भी थक जाता था। अन्तमें दुखी होकर वह अपने गुरुके पास गया, जो एक वनमें एक वृक्षके नीचे रहते थे। उनके पास जाकर बोला, गुरुदेव! मैं इस राज्यके झंझटोंसे, इसकी समस्याओंसे, इसकी उलझनोंसे दुखी हो गया हूँ। एक समस्याको हल करता हूँ, तो दूसरी आकर खड़ी हो जाती है, दूसरीको सुलझाता हूँ तो तीसरी। नित नयी उलझन, नित नये झगड़े। मैं तो दुखी हो गया हूँ इस जीवनसे—क्या करूँ?

गुरुदेवने कहा, 'राजन्! ऐसी बात है तो छोड़ दो इस राज्यको।' राजाने कहा, 'कैसे छोड़ूँ, छोड़ देनेसे इसकी समस्याएँ सुलझ नहीं जायँगी, सब कुछ तितर-बितर हो जायगा। अराजकता फैल जायगी चारों ओर।'

गुरुने कहा, 'बहुत अच्छा, अपने पुत्रको राज्य दे दो। तुम मेरे पास आकर रहो। जैसे मैं रहता हूँ, वैसे निश्चिन्त होकर।' राजाने कहा, 'परंतु मेरा पुत्र तो अभी छोटा-सा बच्चा है, वह इस भारको सँभालेगा कैसे?' गुरुदेवने कहा, 'बहुत अच्छा, तो फिर तुम अपना राज्य मुझे दे दो, मैं चलाऊँगा उसे।' राजाने कहा, यह मुझे स्वीकार है। गुरुने कहा, 'तो हाथमें जल लेकर संकल्प करो। सारा राज्य मुझे दान कर दो।'

राजाने ऐसा ही किया और उठकर चल पड़ा। गुरुने पूछा, 'अब कहाँ जाते हो?' राजाने कहा, 'कोषसे कुछ रुपया लेकर किसी दूसरे देशमें जाऊँगा, वहाँ व्यापार करके जीवन व्यतीत करूँगा।'

गुरुने हँसते हुए कहा, 'राज्य मुझे दे दिया तो कोष भी मेरा ही हो गया। अब उसपर तुम्हारा अधिकार क्या है?' राजाने सिर झुकाकर कहा, वास्तवमें कोई अधिकार नहीं, राज्यमें वापस नहीं जाऊँगा। गुरुने पूछा, 'फिर करोगे क्या?' राजा बोला, 'कहीं जाकर नौकरी करूँगा।' गुरु बोले, 'यदि नौकरी करनी है तो मेरी ही कर लो। इतना बड़ा राज्य है मेरे पास, उसे चलानेके लिये किसी-न-किसीको तो रखना ही पड़ेगा। तुम ही वह काम करो। मुझे सेवककी आवश्यकता है, तुम्हें सेवाकी। बोलो यह काम करोगे?' राजाने सोचते हुए कहा, 'करूँगा।' गुरु बोले, 'तो जाओ, आजसे मेरे सेवक बनकर राज्यको चलाओ। देखो, वहाँ कुछ भी तुम्हारा नहीं है। भला हो, बुरा हो, हानि हो, लाभ हो—सब मेरा होगा। तुम्हें केवल वेतन मिलेगा।'

राजाने इस बातको स्वीकार किया। वापस आकर राज्य चलाने लगा। कोई एक मासके बाद गुरुने नगरमें आकर पूछा, 'कहो भाई! अब इस राज्यको चलाना कैसा लगता है? अब भी क्या दुखी हो गये हो? अब भी क्या जीवन संकटमय प्रतीत होता है?' राजाने कहा, 'नहीं महाराज! अब इसमें मेरा क्या है। मैं तो नौकरी करता हूँ, पूरे ध्यानसे, परिश्रमसे करता हूँ और फिर रातको निश्चिन्त होकर सो जाता हूँ।'

'तो सुनो भाई! यह है वह साधन जिसको अपनानेके पश्चात् मनुष्य कर्म करता हुआ भी उसमें लिप्त नहीं होता। अपने आपको स्वामी न समझो, सेवक समझो। ममता ही बन्धन है, ममता ही दुःख है। ममता गयी कि बन्धन कटा, दुःख मिटा। यहाँ तुम्हारा कुछ है ही नहीं। यह सब तुमसे पूर्व भी विद्यमान था, बादमें भी रहेगा। तुम केवल अपना कर्तव्यपालन करनेके लिये आये हो, उसे पूर्ण करो और चले जाओ। जो कुछ दिखायी देता है, जो कुछ तुम्हारे चारों ओर है, उसमें लिपट न जाओ। कहीं ममता न करो—मालिकका समझकर सेवा करो।'

साधकोंके प्रति—

# सबमें परमात्माका दर्शन

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

स्नान करते समय जब आप साबुन लगाकर रगड़ते हैं, उस समय आपका स्वरूप कैसा दीखता है? बुरा दीखता है। बुरा दीखनेपर भी मनमें ऐसा नहीं रहता कि मेरा स्वरूप बुरा है। मनमें यह रहता है कि यह रूप साबुनके कारण ऊपर-ऊपरसे ऐसा दीखता है, वास्तवमें ऐसा है नहीं। ऐसे ही कोई दुष्ट-से-दुष्ट व्यक्ति दीखे, तो मनमें यह आना चाहिये कि यह ऊपर-ऊपरसे ऐसा दीखता है, भीतरसे तो यह परमात्माका अंश है। काले कपड़ोंको पहननेसे क्या मनुष्य काला हो जाता है? नहीं, जैसा उसका स्वरूप है, वह वैसा ही रहता है। ऐसे ही दुष्टता और सज्जनता अन्त:करणमें रहती हैं। परमात्माका जो अंश है, उसमें अन्तर नहीं पड़ता। एक जीवन्मुक्त है, भगवत्प्रेमी है, सिद्ध महापुरुष है और एक दुष्ट है, कसाई है, जीवोंकी हत्या करता है, चोरी करता है, डाका डालता है, तो उन दोनोंमें परमात्मतत्त्व एक ही है। उस तत्त्वमें कोई अन्तर नहीं है। जो परमात्मतत्त्वको चाहता है, वह उस तत्त्वकी ओर देखता है। व्यवहारमें यथायोग्य बर्ताव करते हुए भी साधककी दृष्टि उस तत्त्वकी ओर ही रहनी चाहिये। उस तत्त्वकी ओर दृष्टि रखनेवालेका नाम ही 'समदर्शी' है। व्यवहारमें समता लानेवाले, सबके साथ खाना-पीना, ब्याह आदि करनेवाले 'समवर्ती' हैं, समदर्शी नहीं। 'समवर्ती' नाम यमराजका है—'**समवर्ती परेतराट्**' (अमरकोश १।१।५८); क्योंकि मौत सबकी समान होती है। अत: ज्ञानीका नाम है—समदर्शी और यमराजका नाम है—समवर्ती। ज्ञानी समदर्शी क्यों है? इसलिये कि वह सबमें समरूप परमात्माको देखता है। दुष्ट आदमीको देखकर यदि दुष्टताका भाव पैदा होता है, तो वह समदर्शी नहीं है, परमात्मतत्त्वका जिज्ञासु नहीं है; कम-से-कम उस समय तो नहीं है।

एक स्थूल दृष्टान्त आता है। एक वैरागी बाबा थे। उनके पास सोनेकी बनी हुई एक गणेशजीकी और एक चूहेकी मूर्ति थी। बाबाजीको तीर्थोंमें जाना था। वे दोनों मूर्तियोंको सुनारके पास ले गये और बोले कि इन्हें ले लो और इनकी कीमत दे दो, जिससे हम तीर्थोंमें घूम आयें। दोनों मूर्तियोंका वजन बराबर था, इसलिये सुनारने दोनोंकी बराबर कीमत कर दी। बाबाजी चिढ़ गये कि जितनी कीमत गणेशजीकी, उतनी ही कीमत चूहेकी—ऐसा कैसे हो सकता है? चूहा तो सवारी है और गणेशजी उसपर सवार होनेवाले हैं, उसके मालिक हैं। सुनार बोला—'बाबाजी! हम गणेशजी और चूहेकी कीमत नहीं करते, हम तो सोनेकी कीमत करते हैं।' सुनार मूर्तियोंको नहीं देखता, वह तो सोनेको देखता है। ऐसे ही परमात्मतत्त्वको चाहनेवाला साधक प्राणियोंको न देखकर उनमें रहनेवाले परमात्मतत्त्वको देखता है।

परमात्मा सबके भीतर हैं—यह बहुत ऊँचे दर्जेकी वस्तु है। उतना न समझ सकें तो इतना समझ लें कि 'सब परमात्माके हैं'। यह सुगमतासे समझनेमें आ जायगा कि ये जितने प्राणी हैं, सब परमात्माके हैं। परमात्माके हैं तो ऐसे क्यों हो गये? अधिक लाड़-प्यार करनेसे बालक बिगड़ जाता है। ये परमात्माके लाडले बालक हैं, इसलिये बिगड़ गये। बिगड़नेपर भी हैं तो परमात्माके ही! अत: उन्हें परमात्माके समझकर ही उनके साथ यथायोग्य बर्ताव करना है। जैसे हमारा कोई प्यारा-से-प्यारा भाई हो और उसे प्लेग हो जाय, तो प्लेगसे परहेज रखते हैं और भाईकी सेवा करते हैं। जिसकी सेवा करते हैं, वह तो प्रिय है, पर रोग अप्रिय है। इसलिये खान-पानमें परहेज रखते हैं। ऐसे ही किसीका स्वभाव बिगड़ जाय तो यह बीमारी आयी है, विकृति आयी है। उसके साथ व्यवहार करनेमें जो दीखता है, वह केवल ऊपर-ऊपरका है। भीतरमें तो उसके प्रति हितैषिता होनी चाहिये।

भगवान् सबके सुहृद् हैं—'**सुहृदं सर्वभूतानाम्**' (गीता ५।२९)। ऐसे ही संतोंके लिये आया है कि वे सम्पूर्ण प्राणियोंके सुहृद् होते हैं—'**सुहृदः सर्वदेहिनाम्**' (श्रीमद्भा० ३।२५।२१)। सुहृद् होनेका अभिप्राय

क्या? कि दूसरा क्या करता है, कैसे करता है, हमारा कहना मानता है कि नहीं मानता, हमारे अनुकूल है कि प्रतिकूल—इन बातोंको न देखकर यह भाव रखना कि अपनी ओरसे उसका हित कैसे हो? उसकी सेवा कैसे हो? हाँ, सेवा करनेके प्रकार अलग-अलग होते हैं। जैसे, कोई चोर है, डाकू है, उनकी मारपीट करना भी सेवा है। तात्पर्य यह है कि उनका सुधार हो जाय, उनका हित हो जाय, उनका उद्धार हो जाय। बच्चा जब कहना नहीं मानता, तब क्या आप उसे थप्पड़ नहीं लगाते? उस समय क्या आपका उससे वैर होता है? वास्तवमें आपका अधिक स्नेह होता है, तभी आप उसे थप्पड़ लगाते हैं। भगवान् भी ऐसा ही करते हैं। जैसे, बच्चे खेल रहे हैं और किसी माईका चित्त प्रसन्न हो जाय तो वह स्नेहवश सब बच्चोंको एक-एक लड्डू दे देती है, परंतु वे उद्दण्डता करते हैं तो वह सबको थप्पड़ नहीं लगाती, केवल अपने बालकको ही लगाती है। ऐसे ही भगवान्‌का विधान हमारे प्रतिकूल हो तो वह उनके अधिक स्नेहका—अपनेपनका द्योतक है।

दूसरेके साथ स्नेह रखते हुए बर्ताव तो यथायोग्य, अपने अधिकारके अनुसार करना चाहिये, पर दोष नहीं देखना चाहिये। किसीके दोष देखनेका हमारा अधिकार नहीं है। जैसे, नाटकमें एक मेघनाद बन गया और एक लक्ष्मण बन गया। दोनों एक ही कम्पनीके हैं। पर नाटकके समय कहते हैं—अरे, तुझे मार दूँगा। आ जा मेरे सामने, समाप्त कर दूँगा। वे शस्त्र-अस्त्र भी चलाते हैं, परंतु भीतरसे उनमें वैर है क्या? नाटकके बाद वे एक साथ रहते हैं, खाते-पीते हैं; क्योंकि उनके हृदयमें वैर है ही नहीं।

संतोंके लिये कहा गया है—

**संतों की गति रामदास, जग से लखी न जाय।**
**बाहर तो संसार-सा, भीतर उल्टा थाय॥**

बाहरसे वे संसारका बर्ताव करते हैं, पर भीतरसे परमात्मतत्त्वको देखते हैं। भीतरसे उनका किसीके साथ द्वेष नहीं होता और सबके साथ मैत्री तथा करुणाका भाव होता है—'**अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च**' (गीता १२।१३)। हृदयसे वे सबका हित चाहते हैं।

अब प्रश्न यह है कि हमारी दृष्टि सम कैसे हो? एक तो आपमें यह बात दृढ़तासे रहे कि 'मैं तो साधक हूँ, परमात्मतत्त्वका जिज्ञासु हूँ' और एक यह बात दृढ़ रहे कि 'सबमें परमात्मा हैं।' सबमें परमात्माको कैसे देखें? इस बातको थोड़ा ध्यानसे सुनें। 'मनुष्य है'—इसमें जो 'है'पना है, सत्ता है, वह कभी मिटती नहीं। वह बुरा हो या भला हो, दुराचारी हो या सदाचारी हो, उसमें जो 'है'पना है, वह मिटेगा क्या? बढ़िया-से-बढ़िया वस्तुओंमें भी वह 'है'पना है और कूड़ा-करकट आदिमें भी वह 'है'पना है। उन वस्तुओंका रूप बदल जाता है, पर 'है'पना (सत्ता) नहीं बदलता। कूड़ा-करकटको जला दो तो वह राख बन जायगा, उसका रूप दूसरा हो जायगा। पर उसकी सत्ता दूसरी नहीं हो जायगी। वह सत्ता परमात्माकी है। उस सत्ताकी ओर दृष्टि रखे। जो परिवर्तन होता है, वह प्रकृतिमें होता है। आपको संक्षेपसे प्रकृतिका स्वरूप बतायें तो एक वस्तु और क्रिया—ये दो प्रकृति हैं। वस्तु भी बदलती रहती है और क्रिया भी बदलती रहती है। यह बदलना प्रकृतिका है। आप प्रकृतिके जिज्ञासु नहीं हैं, परमात्माके जिज्ञासु हैं। अतः बदलनेवालेको न देखकर रहनेवाले 'है'पनको देखें। संसार है, मनुष्य है, पशु है, पक्षी है; यह जीवित है, यह मुर्दा है—इसमें तो अन्तर है, पर 'है' में क्या अन्तर पड़ा? लाभ हो गया, हानि हो गयी; पोतेका जन्म हुआ, बेटा मर गया, तो लाभ-हानिमें, जन्मने-मरनेमें अन्तर है, पर दोनोंके ज्ञानमें क्या अन्तर पड़ा? न उस वस्तुकी सत्तामें अन्तर पड़ा और न आपके ज्ञानमें अन्तर पड़ा।

व्यवहार तो स्वाँगके अनुसार ही होगा। हम साधु हैं तो साधुकी तरह स्वाँग करेंगे। गृहस्थ हैं तो गृहस्थकी तरह स्वाँग करेंगे। सामने जो व्यक्ति है, परिस्थिति है, उसे लेकर बर्ताव करना है; परंतु भीतरसे, सिद्धान्तसे यह रहे कि सबमें एक परमात्मतत्त्वकी सत्ता है। सत्यरूपसे, ज्ञान-रूपसे और आनन्दरूपसे सबमें परमात्मा ही परिपूर्ण है।

एक काल्पनिक सत्ता होती है और एक वास्तविक सत्ता होती है। पैदा होनेके बाद होनेवाली सत्ता काल्पनिक है और पैदा न होनेवाली अर्थात् नित्य

रहनेवाली सत्ता वास्तविक है। जैसे, बालक पैदा हुआ, तो पैदा होनेके बाद 'बालक है' ऐसा दीखता है। पैदा होनेसे पहले वह बालक नहीं था। बालक होनेके बाद फिर वह जवान हो जाता है। इस प्रकार वह बदलनेवाली काल्पनिक सत्ता प्रकृतिकी है। मूलमें परमात्मतत्त्वकी वास्तविक सत्ता है, जो कभी बदलनेवाली नहीं है। परमात्मतत्त्वका जिज्ञासु उस न बदलनेवाली सत्ताको देखता है और संसारी आदमी बदलनेवाली सत्ताको देखता है, एककी दृष्टि पारमार्थिक है और एककी दृष्टि सांसारिक है। जैसे स्थूल दृष्टिसे माँ, बहन और स्त्री एक समान ही दीखती हैं, पर भाव-दृष्टिसे देखें तो माँ, बहन और स्त्री—तीनों अलग-अलग दीखती हैं। बाहरकी स्थूल दृष्टि तो पशुकी दृष्टि है, मनुष्यकी दृष्टि नहीं। साधककी दृष्टि तत्त्वपर रहती है, इसलिये वह सब जगह एक परमात्माको ही देखता है।

**यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।**
**तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥**

(गीता ६। ३०)

'जो सबमें मुझे देखता है और सबको मुझमें देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।'

एक बच्चेने माँसे कहा—'माँ! मुझे गुड़ चाहिये।' माँने कहा कि ग्वार ले जा और बदलेमें बनियेके यहाँसे गुड़ ले आ। बच्चा घरसे ग्वार ले गया और बनियेसे बोला—'मुझे गुड़ चाहिये।' बनियेने तौलकर ग्वार ले लिया और गुड़ तौलकर दे दिया। बच्चा सोचने लगा—'बनिया कितना मूर्ख है! ग्वारजैसी वस्तु पशुओंके खानेकी है, मनुष्यके कामकी नहीं है, उसके बदलेमें यह मुझे गुड़ देता है।' इस तरह ग्वार और गुड़पर दृष्टि रहनेके कारण बच्चेको बनिया मूर्ख दीखता है; परंतु बनियेकी दृष्टि पैसोंपर है कि ग्वार कितने पैसोंका है और गुड़ कितने पैसोंका है। बनिया दो तरहसे पैसे कमाता है—माल लेता है तो सस्ता लेता है और बेचता है तो महँगा बेचता है। अतः उसने ग्वारमें नफा अलग लिया और गुड़में नफा अलग लिया। बनियेको ग्वार और गुड़से क्या मतलब? उसे तो पैसा प्राप्त करना है। ऐसे ही साधककी दृष्टि परमात्मतत्त्वपर होती है। सबमें जो परमात्मा है, उसीको प्राप्त करना है, संसारसे क्या मतलब?

साधकको व्यवहार तो यथायोग्य करना है, पर महत्त्व परमात्मतत्त्वको ही देना है, व्यवहारको नहीं। व्यवहारमें किसीने आदर कर दिया तो क्या हो गया? किसीने निरादर कर दिया तो क्या हो गया? आदर करनेवाला तो हमारा पुण्य क्षीण करता है और निरादर करनेवाला हमारा पाप नष्ट करता है। हमारा लाभ किसमें है, पाप रखनेमें कि नष्ट करनेमें? जो हमें दुःख देता है, अपमान करता है, निन्दा करता है, तिरस्कार करता है, वह हमारे पापोंका नाश करता है। जो हमारा आदर-सत्कार करता है, वाह-वाह करता है, वह हमारे पुण्योंका नाश करता है। हम पापोंका नाश करनेका उद्योग करते हैं, पर निरादर करनेवाला हमारे पापोंका नाश स्वतः ही कर रहा है। यह उसकी कितनी कृपा है! उसका हमारेपर कृपा करनेका आशय नहीं है, पर वह क्रिया तो हमारे लाभकी ही कर रहा है। वह हमारा हितैषी नहीं है, पर क्रिया तो हमारे हितकी ही कर रहा है। वह जो करता है, वह हमारे लिये ठीक ही होगा, बेठीक हो ही नहीं सकता।

एक मार्मिक बात है कि साधकके लिये कोई परिस्थिति अनिष्टकारी होती ही नहीं। संसारका जितना व्यवहार है, वह सब-का-सब साधन-सामग्री है। सुखदायी-दुःखदायी, अनुकूल-प्रतिकूल जो कुछ सामने आता है, वह सब साधन-सामग्री है। इसलिये साधकको सावधान रहना चाहिये। सावधानी ही साधना है। साधक वह होता है, जो हर समय सावधान रहता है।

**दिलमें जाग्रत रहिये बन्दा।**
**हेत प्रीत हरिजज सूँ करिये, परहरिये दुखद्वन्दा॥**

जब अच्छा और मन्दा होता है, राग और द्वेष होता है, तब हम जाग्रत् कहाँ रहे! अतः मैं साधक हूँ और मेरे साध्य परमात्मा हैं—इसकी जागृति रखते हुए साध्यकी प्राप्तिके लिये यथायोग्य बर्ताव करना है।

नारायण! नारायण! नारायण!

# महामारीजन्य उपसर्गोंका शास्त्रोक्त विवरण एवं शमन

( पं० श्रीगंगाधरजी पाठक )

विश्वप्रसिद्ध श्रीदुर्गासप्तशतीके बारहवें अध्यायमें स्पष्ट है—

**व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर।**
**महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया॥**
**सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा।**
**स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी॥**

महाप्रलयके समय महामारीका स्वरूप धारण करनेवाली भगवती महाकाली ही इस समस्त चराचर ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं। वे ही बलि-होमादिकी अप्राप्तिसे कुपित हो प्रलयकालमें महामारीरूपसे विश्वको अपना ग्रास बना लेना चाहती हैं। वे ही अजा होनेपर भी सृष्टि-स्थिति बन जाती हैं तथा वही सनातनी देवी भगवती महामाया सम्यक् आराधना-उपासनासे प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण जीवोंकी रक्षा भी करती हैं।

प्राधानिकरहस्यमें जब भगवती महाकालीने आद्याशक्ति महालक्ष्मीसे अपने नाम और कर्मोंके बारेमें पूछा तब महालक्ष्मीने—'**महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा**' महाकालीको अनेक नाम देते हुए एक नाम 'महामारी' भी दिया, जिनका कर्म संसारमें बलि-होमादि और भगवन्नाम-संकीर्तनादिसे रहित दुष्ट पापात्माको व्यापकरूपसे प्रलयंकारी सामूहिक दण्ड देना है। पुनः मूर्तिरहस्यके अनुसार भी '**सा महामारीति गीयते**' भगवती महाकाली ही महामारी देवीके नामसे जानी जाती हैं।

श्रीदुर्गासप्तशतीकी शान्तनवी आदि टीकाओंमें विविधप्रकारसे महामारी शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य रहस्यार्थ प्रकट किया गया है—

'**महांश्चासौ अकालश्चेति महाकालः अनिष्ट-कालः अकालः कालाग्निरुद्रः तस्मिन्नुपस्थिते महा-काले संहारसमये समुपस्थिते सति। महांश्चासौ कालः कालाग्निरुद्रः संहारकमहाकालः तस्येयं स्त्री महाकाली तया मारयति संहरति मारः। पचाद्यच्। महांश्चासौ मारश्च संहारकः महामारः कालाग्निरुद्रः तस्येयं स्त्री महामारी, सा स्वरूपं यस्याः सा देवी महामारीस्वरूपा। यद्वा 'मह उद्धव उत्सवः' महानुत्सवानासमन्तान्मारयति नाशयति महामारी महाप्रलयानलज्वाला, तस्या इव स्वरूपं यस्याः सा महामारीस्वरूपा 'मृत्युजिह्वा महामारी जगत्संहारकारिणी।'**'

उपर्युक्त शास्त्रीय व्युत्पत्तियोंसे सिद्ध है—जब संसारमें विविधविध याग-बलि-होमादि एवं भगवन्नामजपादि सात्त्विक वृत्तियोंका अभाव हो जाता है, तब तमोगुणमयी भगवती महाकाली ही सर्वसंहारिणीशक्ति मृत्युजिह्वा महामारी आदिके रूपमें विश्वको अपना बलि—आहार बना लेना चाहती हैं। ब्रह्मवैवर्त्तमहापुराणमें उद्धवजीने महामारीदेवीके नामसे श्रीराधारानीकी स्तुति की है। प्रायः सभी देवियोंकी सहस्रनामावलियोंमें मारी या महामारी नाम आये हैं। ब्रह्माण्डमहापुराण एवं श्रीमद्देवीभागवत-महापुराणके अनुसार तथा गीताप्रेसके व्रतपरिचय नामक पुस्तकमें भी महामारीकी शान्तिका किंचित् विधान दिया गया है। विभिन्न श्रुति-स्मृतियों एवं तन्त्रागमोंमें महामारीसे उत्पन्न विविध महोपसर्गोंके शान्तिविधानकी चर्चा विस्तारसे उपलब्ध है।

कामन्दकीयनीतिसार १४। २०-२१के अनुसार अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष और मरक—ये पाँच प्रकारके प्रलयकारक भयंकर दैवकोप होते हैं, जिनकी शान्तिके लिये राजा-प्रजाके द्वारा अथर्ववेदोक्त शान्तिविधान एवं श्रीदुर्गाराधनादि कर्मसम्पादनको अनिवार्य बताया गया है।

**हुताशनो जलं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरकस्तथा।**
**इति पञ्चविधं दैवं व्यसनं मानुषं परम्॥**
**दैवं पुरुषकारेण शान्त्या वा प्रशमं नयेत्।**
**उत्थायित्वेन नीत्या वा मानुषं कार्यतत्त्ववित्॥**

शब्दकल्पद्रुममें उद्धृत ज्योतिस्तत्त्वम्‌के वचनमें इनके उत्पन्न होनेके कतिपय ज्योतिषीय कारण भी बताये गये हैं, जिनमें मकरराशिमें शनिका रहना भी एक कारण है—

**यावन्मार्त्तण्डसूनुर्गवि धनुषि झषे मन्मथे वास्ति नार्या**
**तावद्दुर्भिक्षपीडा भवति च मरकं संक्षयं यान्ति लोकाः।**

**हाहाकारा तथोर्वी मनुजभयकरी फेरुरावैश्च भीमैः**
**शून्यग्रामा भवेयुर्नरपतिरहिता भूरिकङ्कालमाला॥**

आयुर्वेदादिके अनुसार भी महामारियोंका प्रकोप अधर्मजन्य है। इन संक्रामकरोगोंके निरोधके लिये यथाविधि धर्मकृत्य, यज्ञानुष्ठान, हवन, धर्मोपदेश, भगवन्नामकीर्तन एवं स्वास्थ्योपदेशादिकी अनिवार्यता है। सविधि हवनसे अनेक प्रकारके लौकिक लाभ भी विज्ञानसिद्ध हैं, यथा—वायुका शुद्ध होना, दूषित विषाणु-जीवाणुओं (Virus-Bacteria)-का नष्ट होना, आरोग्य एवं बलकी प्राप्ति होना, जीवनीशक्ति प्रदान करनेयोग्य प्राणप्रद (Oxygen आदिसे संयुक्त) सुगन्धित वायुका उत्पन्न होना आदि। वेदों एवं उपवेदोंमें धूमचिकित्साकी बड़ी महत्ता है। ऋग्वेदसंहिता (१०।१६१।१) एवं अथर्ववेदसंहिता (३।११।१)-में यज्ञहोमसे यक्ष्माणुके नष्ट होनेका विवरण है—

**'मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।'**

गोपथब्राह्मण (३।१।१६)-में यज्ञको सर्वरोगहर महौषध बताया गया है।

**भैषज्या यज्ञा वा एते। तस्माद‍ृतुषु सन्धिषु प्रयुज्यन्ते, ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते॥**

चरकसंहितामें भी एतद्विषयक प्रचुर वर्णन हैं। महर्षि आत्रेय भी यही कहते हैं—

**'सत्कथा धर्मशास्त्राणां महर्षीणां जितात्मनाम्।**
**धार्मिकैः सात्त्विकैर्नित्यं सहास्या वृद्धसम्मतैः॥**
**इत्येतद्भेषजं प्रोक्तमायुषः परिपालनम्।**
**येषामनियतो मृत्युस्तस्मिन् काले सुदारुणे॥'**

भगवान् वेदव्यासके अनुसार विशुद्ध गोवंशके नाशसे यज्ञका नाश, यज्ञनाशसे देव-पितरोंके हव्य-कव्योंका नाश, तत्पश्चात् देवताओंके प्रलयंकर कोपसे संसारका सर्वविनाश होना निश्चित है—

**गोषु प्रनष्टमानासु यज्ञो नाशं गमिष्यति।**
**यज्ञे नष्टे देवनाशस्ततः सर्वं प्रणश्यति॥**

श्रौत-स्मार्तयज्ञोंके मूलाधार हव्य-कव्यप्रद गोवंश और मन्त्रधारण करनेवाले ब्राह्मणोंके संरक्षणसे विश्वका कल्याण होगा, क्योंकि वेदादि सभी शास्त्रोंमें सर्वश्रेष्ठ कर्म यज्ञको ही विश्वका जीवन सिद्ध किया गया है—**'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म', 'यज्ञो विश्वस्य जीवनम्'।**

सुश्रुताचार्यने तो सुश्रुतसंहिता ६।२० एवं ६।२१ में स्पष्टरूपसे महामारी फैलनेका प्रधान कारण अधर्म,यज्ञका न करना, पापाचारमें रत रहना आदि बताया है। दूषित देश, दूषित जल-वायु और दूषित औषध आदिसे दो प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं—सामान्य तथा मरक। इनके प्रतीकारार्थ स्थानपरित्याग, शान्तिकर्म, प्रायश्चित्त, मंगलार्थ जप-होम, तप, यम-नियम, देवर्षिपितृपूजन, भगवन्नामजप-संकीर्तन आदि सत्कर्मानुष्ठानादि करने चाहिये। सुश्रुतसंहिताके निदानस्थानमें संक्रामक रोग उत्पन्न होनेके अन्य विविध कारण भी बताये गये हैं—

**प्रसङ्गाद्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात्सहभोजनात् ।**
**एकशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात्॥**
**कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।**
**औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥**

संक्रमित व्यक्तिके साथ बैठने-उठनेसे, गात्रस्पर्शसे, निःश्वाससे, सहभोजनसे, एक शय्या या एक आसनपर लेटने-बैठनेसे, उनके वस्त्र-माला-उपानह आदि धारण कर लेनेसे अथवा रोगीके लगाये चन्दनादि द्रव्योंका लेप करनेसे कुष्ठ, आन्त्रिकज्वर, प्रवाहिका, विसूचिका एवं महामारीजन्य अन्य औपसर्गिक रोग एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें प्रवेश कर जाते हैं।

मनुष्य जब मिथ्याहार-विहारसे अपनी क्षमताशक्ति (Vitality)-को नष्ट कर देता है और उसकी व्याधिप्रतीकारकशक्ति भी नष्ट हो जाती है, तब वह सांसर्गिक महामारियोंसे ग्रस्त हो जाता है। सम्प्रति भारतवर्षमें उपयुक्त आहार-विहारके अत्यन्ताभावसे दयनीय दुर्दशा हो रही है। विशुद्ध गोवंशके विनाशसे दुग्ध-घृतादिका अभाव-सा हो गया है और उसके स्थानपर कृत्रिम दुग्ध-घृतादिका उपयोग होनेसे फुफ्फुसीय रोग, श्वास, कास, प्रतिश्याय, दृष्टिदौर्बल्य, असमयमें बालका झड़ना-पकना, मन्दाग्नि तथा वीर्यसम्बन्धी रोग उत्पन्न हो रहे हैं। बलकारक खाद्य-पेयसामग्रीके अभावसे मनुष्योंमें रोगनिरोधकशक्तिके ह्रास होनेसे महामारियोंका

प्रकोप होता है।

पुराण, महाभारत, ज्योतिष एवं आयुर्वेदादिके निर्देशानुसार विविध कारणोंसे उत्पन्न महामारीकी शान्तिके लिये श्रद्धापूर्वक देवीमाहात्म्यपाठ, वटुकभैरवस्तवपाठ और तुलसीसे श्रीविष्णुभगवान्‌का सहस्रार्चन स्वयं या ब्राह्मणद्वारा करके सभी कष्टोंको हरनेवाले ब्रह्मपुराणोक्त '**ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा**' इस मन्त्रका यथासाध्य जप एवं हवन करना-कराना चाहिये। महामारीजन्य सकल उपद्रवोंकी शान्तिके लिये धर्म एवं शास्त्रप्रयोगनिष्ठ अप्रमादी विद्वान् ब्राह्मणोंके द्वारा '**सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते। यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम्**' अथवा '**उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्। तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम॥**' आदिसे प्रतिमन्त्रसम्पुटित श्रीदुर्गासप्तशतीका यथासामर्थ्य नवचण्डी, शतचण्डी, सहस्रचण्डी, अयुतचण्डी या लक्षचण्डीयागका सम्पादन कराना चाहिये; इन दोनों मन्त्रोंका यथासाध्य जप भी लाभदायक है। अप्रमादी वेदज्ञ ब्राह्मणोंके द्वारा श्रीमहामृत्युंजयमन्त्रका जप एवं इससे सम्पुटित श्रीदुर्गासप्तशतीका यथासंख्य पाठ भी अतिशय लाभकारी है। श्रीदुर्गासप्तशतीके चतुर्थ अध्यायके '**शूलेन पाहि नो देवि……तैरस्मान् रक्ष सर्वतः॥**' इन चार मन्त्रोंका अधिकाधिक जप अतिशीघ्र लाभप्रद है, इन्हीं मन्त्रचतुष्टयको मूल चण्डीकवच कहा जाता है। शिखा-यज्ञोपवीतधारी द्विज '**ॐ ह्रीं महामार्यै नमः**' इस मायाबीजसमन्वित महामारीके मूलमन्त्रका यथाविधि चार लाख जप करें-करायें। शिखा-सूत्ररहित श्रद्धालु '**श्रीमहामार्यै नमः**' का उतना ही जप करें तो भी सभी उपद्रव शान्त हो जायँगे। '**आपदामपहर्त्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्। लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥**' का जप या इससे सम्पुटित श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायणका पाठ महत्त्वपूर्ण है। साधक यथाधिकार श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड एवं श्रीहनुमानचालीसाका पाठ करे। अपने श्वासोंको भगवन्नाममय बना ले। विश्वकल्याणार्थ ब्राह्मण स्वयं भी प्रमादरहित हो निष्ठापूर्वक इन अनुष्ठानोंको करें।

आधेयरूप यज्ञादि सकल सत्कर्मोंके मूल आधार भगवान् श्रीराम-कृष्णादिके सर्वसिद्धिप्रद मंगलमय पावन नाम हैं। भगवान्‌के नाममें पापहरणकी जितनी क्षमता है, आजतक कोई महापापी उतना पाप कर ही नहीं पाया है—

**'नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।**
**तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥'**

भगवान्‌के नाममें विषको भी अमृत बना डालनेकी अद्भुत सामर्थ्य है। आनन्दरामायण जन्मकाण्ड ६। ४३में विषपान करते हुए सर्वसक्षम शिवजीने स्वयं कहा था—

**श्रीरामनामामृतमन्त्रबीजं सञ्जीवनी चेन्मनसि प्रविष्टा।**
**हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः॥**

भगवान् श्रीरामका नाम सम्पूर्ण मन्त्रोंका बीज यानी मूल है। मरेको भी जीवित कर देनेवाली श्रीरामनामरूपिणी यह संजीवनी जिस भाग्यवान्‌के अन्तःकरणमें प्रविष्ट हो गयी, उसके लिये हालाहलविष हो, प्रलयानलज्वाला हो या साक्षात् मृत्युमुख ही क्यों न हो—उसमें भी प्रवेश कर जानेमें भय कहाँ! यह कहते हुए शिवजीने महाविषका पान कर लिया। श्रीरामनामामृतके प्रभावसे विष भी अमृत हो गया, शिवजीको नीलकण्ठकी उपाधि मिली। श्रीरामनामरूपी महौषधके अनिर्वचनीय लोकोत्तर प्रभावसे चराचर जगत्‌के प्राणियोंके प्राणरक्षण हुए। श्रीकृष्णनामके प्रभावसे मीराबाईके विषका विषत्व नष्ट हो गया। भगवन्नामरूपी महौषधके सामने कोई भी विषाणु-जीवाणु तुच्छातितुच्छ ही है। इसीलिये तो भगवान् श्रीवेदव्यासने वेदादि सकलशास्त्रोंका बार-बार मन्थन करके अन्तिम निर्णयके रूपमें स्पष्ट ही कर दिया है—

**नामसङ्कीर्त्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।**
**प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥**

**'रामनामजपतां कुतो भयम्', 'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्'** आदि।

भगवान् तो हमारे परमाभ्युदय और निःश्रेयसके लिये सदैव बाँहें फैलाकर खुली घोषणा करते रहते हैं—

**मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥**
**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।**
**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥**

समर्पित हृदय जीव अहैतुकीकृपा करनेवाले करुणावरुणालय भगवान्से केवल एक बार कह दे—'हे नाथ! मैं तुम्हारा हूँ।' क्योंकि भगवान् चाहते हैं कि जीव मुझसे रक्षाकी अपेक्षा करे—**'रक्षापेक्षामपेक्षते'** पुनः उस परमसौभाग्यवान् जीवका कभी बाल भी बाँका नहीं हो सकता। जिस श्रीकृष्णने स्वजनोंकी रक्षाके लिये विनाशकारी दावानलका पान कर लिया था, विश्वासपूर्वक आर्त्तभावसे पुकारनेपर आज भी वे महामारीजन्य ज्वालाका पान कर लेंगे। भगवान् धन्वन्तरि और महर्षि व्यासने तो सुस्पष्टरूपेण डिण्डिम घोषणा कर दी है—

**अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।**
**नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥**

ॐ अच्युताय नमः। ॐ अनन्ताय नमः। ॐ गोविन्दाय नमः।

# गयाश्राद्धका महत्त्व

( श्रीइन्द्रलालजी त्रिपाठी )

**पितर कौन—**पितर वे हैं, जो पिछला शरीर त्याग चुके हैं, किंतु अगला शरीर अभी प्राप्त नहीं कर सके हैं। इस मध्यवर्ती स्थितिमें रहते हुए वे अपना स्तर मनुष्यों-जैसा ही अनुभव करते हैं। मरनेके बाद भी जीवात्माका अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता है, वह किसी-न-किसी रूपमें बना ही रहता है। पुनर्जन्मके अनेक दृष्टान्त पुस्तकोंमें मिलते हैं। शोधकर्ताओंद्वारा उनका सत्यापन भी हुआ। नये जन्मे हुए बच्चोंद्वारा बताये गये पूर्वजन्मके स्थान, सम्बन्धियोंके नाम आदिकी जब खोजबीन करवायी गयी, तो वे सही पाये गये। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पुनर्जन्म होता है। ऐसा इसलिये होना पाया गया; क्योंकि जन्मकालमें उन आत्माओंकी अभिलाषाओंकी पूर्ति नहीं होनेके कारण वे अधूरी रह गयीं—उनको पूर्ण करनेके लिये वे सूक्ष्म शरीरसे कुछ नहीं कर सकते, किंतु अतृप्त आकांक्षा पूरी करनेके लिये उनपर दबाव डालती हैं और वे उन आकांक्षाओंकी पूर्ति करना चाहते हैं।

पितर ऐसी उच्च आत्माएँ होती हैं, जो मरण और जन्मके बीचकी अवधिको प्रेत बनकर गुजारती हैं, किंतु अपने उच्च स्वभाव-संस्कारके कारण यथासम्भव दूसरोंकी सहायता करती रहती हैं। उनमें मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक शक्ति होती है। सूक्ष्म जगत्से सम्बन्ध होनेके कारण उनकी भविष्यके बारेमें भी जानकारियाँ होती हैं, जिससे वे समय-समयपर सम्बद्ध लोगोंको सतर्क करती हैं तथा सहायता भी करती हैं, ये आत्माएँ कुमार्गीसे असन्तुष्ट रहती हैं तथा सन्मार्गपर चलनेवालोंपर प्रसन्न रहती हैं। अतः पितरोंका श्रद्धापूर्वक तर्पण, श्राद्ध करना चाहिये, वे शान्ति देंगे।

**पितृपक्ष—**हिन्दू-संस्कृतिमें पितृपक्षका बड़ा महत्त्व है। ऐसा कहा जाता है, जो पितरोंके नामपर श्राद्ध-तर्पण एवं पिण्डदान नहीं करता है, वह सनातन हिन्दू नहीं माना जा सकता है। हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार मृत्यु होनेपर मनुष्यका जीवात्मा चन्द्रलोककी तरफ जाता है और ऊँचा उठकर पितृलोकमें पहुँचता है। इन मृतात्माओंको अपने नियत स्थानतक पहुँचनेकी शक्ति प्रदान करनेके लिये पिण्डदान और श्राद्धका विधान किया गया है। श्राद्धमें पितरोंके नामपर यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन एवं दान भी किया जाता है, शास्त्रोंके अनुसार इस पुण्यफलसे ही पितरोंका सन्तुष्ट होना माना गया है। पितरोंके आशीर्वादसे आयु, पुत्र, यश, बल, वैभव, सुख और धन-धान्य प्राप्त होता है, इसलिये धर्मप्राण हिन्दू आश्विनमासके कृष्णपक्षमें प्रतिदिन नियमपूर्वक स्नान करके पितरोंका तर्पण करते हैं। जो दिन उनके पितरोंका होता है, (मृत्यु-तिथि) उस दिन अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मणभोजन कराकर उन्हें वस्त्रादि-दान देकर सन्तुष्ट करते हैं।

**गयातीर्थकी कथा—**हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार पितरोंका पिण्डदान करनेका सबसे बड़ा स्थान गयातीर्थ

माना गया है। ऐसी मान्यता है कि गयाजीमें पितरोंका पिण्डदान कर देनेपर फिर प्रतिवर्ष पिण्डदानकी आवश्यकता नहीं रहती है। यह भी प्रसंग आता है कि राजा रामचन्द्रजीने गया जाकर फल्गुनदीके किनारे अपने मृत पिता महाराजा दशरथका पिण्डदान किया था। हिन्दू संस्कृतिकी महानता है कि पितरोंके प्रति श्रद्धा-भावनाके कारण वर्षमें पूरे पन्द्रह दिन पृथक्से इनकी आत्माओंकी शान्तिके लिये तर्पण किये जाते हैं। तर्पणके साथ-साथ इन्हें सन्तुष्ट करनेके लिये हवन भी करनेका प्रावधान सूतसंहितामें बताया गया है, एवं शास्त्रोंकी ऐसी भी मान्यताएँ हैं कि गयाजीमें श्राद्ध करनेसे जीवात्माकी सद्‌गति होती है, परंतु भागवत-कथामें ऐसा प्रसंग आया है कि 'धुंधुकारी' का गयाश्राद्ध उसके भाई 'गोकर्ण' ने विधिवत् किया था, फिर भी उसकी प्रेतयोनि नहीं छूटी, इसका कारण शौनक ऋषिने व्यासजीसे पूछा, उन्होंने बताया, 'गया' श्राद्धका आध्यात्मिक मर्म समझ लोगे तो बात समझमें आयेगी। देवकार्यसे पितृकार्य विशिष्ट होता है—**देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते।** श्राद्धमें जिस व्यक्तिका श्राद्ध करना हो, उसके नाम, गोत्र, पिता, पितामह, प्रपितामहके नाम-गोत्रका उच्चारणकर उसे पिण्ड दिया जाता है। धुन्धुकारी गोकर्णका सगा भाई नहीं था, उसके माता, पिता, गोत्र आदि सब भिन्न थे और गोकर्णको इसका ज्ञान नहीं था। अत: पिताका नाम और गोत्रका नाम सही न होनेसे उसे पिण्डकी प्राप्ति ही नहीं हो सकी, इसलिये उसकी गयाश्राद्धसे मुक्ति कैसे होती? ऐसेमें उसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुनाकर गोकर्णने उसका उद्धार किया और प्रेतत्वसे मुक्ति दिलायी। श्राद्धमें संकल्पका ठीक होना आवश्यक होता है, जबकि देवता भावग्राही होनेसे व्यक्तिके मनकी भावना जानकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।

गयामें श्राद्ध क्यों किया जाता है, इस सम्बन्धमें एक कथा है—गयासुर नामक एक असुर था, उसने तपद्वारा सारी विभूतियाँ प्राप्त कर ली थीं। उसके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी आये और उसे वर माँगनेको कहा। गयासुर अहंकारी था, उसने कहा, मैं आपसे क्या वर माँगूँ? मुझमें क्या कमी है? आप चाहें तो मुझसे कुछ माँग लें। ब्रह्माजीने सोचा यह अहंकारी असुर किसीके मारनेसे नहीं मरेगा, शायद यज्ञके प्रभावसे मर जाय, अत: उन्होंने यज्ञके लिये उसका शरीर माँग लिया, उसकी छातीपर सौ वर्षोंतक यज्ञ किया गया, किंतु फिर भी वह मरा नहीं, वह ज्यों ही उठनेको हुआ, ब्रह्माजीने भगवान्‌का स्मरण किया, तब भगवान् स्वयं प्रकट हो गये और उन्होंने गयासुरकी छातीपर दोनों चरण रखे, भगवान्‌के चरणकी छाप पड़नेसे असुरका असुरत्व नष्ट हुआ। उसने वर माँगा कि मेरा सम्पूर्ण शरीर पवित्र क्षेत्र हो जाय। इससे उसका सम्पूर्ण शरीर गयाक्षेत्र हो गया। उस सम्पूर्ण क्षेत्रमें कहीं भी पिण्डदान करनेसे पितरोंको अक्षय तृप्ति मिलती है। आगे उसने कहा, इस यज्ञक्षेत्रमें विष्णुपदपर जिसका श्राद्ध हो, उसे सद्‌गति मिले। भगवान्‌ने गयासुरकी इस मंगल कामनाका आदर किया। उसे सद्‌गति तथा वरदान भी प्रदान किया।

पितृतीर्थ गयाजीमें भगवान् गदाधर नित्य विराजमान हैं, अन्य स्थानपर भी श्राद्ध करते समय उनका स्मरण करना चाहिये—

**यः श्राद्धसमये दूरात्स्मृतोऽपि पितृमुक्तिदः।**
**तं गयायां स्थितं साक्षान्नमामि श्रीगदाधरम्॥**

गयाश्राद्ध करनेके पश्चात् गयाजीसे वापस घर लौटते समय भगवान् गदाधरसे प्रार्थनाकर उनसे घर जानेकी आज्ञा लेनी चाहिये—

**गदाधर गयाश्राद्धं यच्चीर्णं त्वत्प्रसादतः।**
**अनुजानीहि मां देव गमनाय गृहं प्रति॥**

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अ० २३)

श्रद्धासे श्राद्ध शब्द बना है। मृत आत्माके प्रति श्रद्धापूर्वक किये कार्यको श्राद्ध कहते हैं, श्राद्धसे श्रद्धा जीवित रहती है। पितरोंके लिये श्रद्धा प्रकट करनेका माध्यम केवल श्राद्ध ही है। यह हमारी संस्कृतिकी महानता है। तर्पणके द्वारा उनके जीवनका उत्थान होगा, उन्हें शान्ति मिलेगी तो उनकी अन्तरात्मासे आपके प्रति शान्तिदायक सद् प्रेरणाएँ निकलेंगी। अत: श्राद्धपक्षमें तर्पण-श्राद्ध अवश्य करना चाहिये।

# कर्मबन्धनसे कैसे छूटें ?

( श्रीसनातनकुमारजी वाजपेयी 'सनातन' )

स्वरूपत: हम कौन हैं? कहाँसे आये हैं? हमारा गन्तव्य क्या है? यह संसारका अत्यन्त जटिल प्रश्न है। पूरा विश्व इसका समुचित उत्तर देनेमें बगलें झाँकने लगता है। मौन साध लेता है।

संसारमें अनेक धर्म हैं। सम्प्रदाय हैं। धर्मगुरु हैं। विद्वान् हैं। मत-मतान्तर हैं। सब अपने-अपने ढंगसे अपनी-अपनी बात तो कहते हैं, किंतु इस गूढ़ प्रश्नका सार्थक समाधान नहीं कर पाते।

दुनियाके सारे लोग अशान्त हैं। मानसिक रूपसे पीड़ित हैं, किंतु आखिर शान्ति है कहाँ? क्या भोग-विलासके समस्त साधन जुटा लेनेसे जीवको शान्तिका साम्राज्य प्राप्त हो जाता है? उत्तर होगा—नहीं। तब फिर उस शान्तिको कहाँ खोजा जाय? क्या भौतिक जगत्में? धर्म-सम्प्रदायोंके घेरेमें?

दुनियाके अनेक देशोंने अपार भौतिक साधन जुटा लिये हैं। बड़े-बड़े राजमहलोंमें निवास करते हैं। अरबों-खरबोंकी सम्पत्ति है उनके पास। फिर भी वे अशान्त हैं। आखिर क्यों?

आज मनुष्यके द्वारा अनेक वैज्ञानिक उपकरणोंका आविष्कार कर लिया गया है। सारी सुविधाएँ जुटा ली गयी हैं। चन्द्रलोकमें मानवके चरण पड़ चुके हैं। हिमालयकी सर्वोच्च चोटी एवरेस्टपर अपनी विजय-पताका फहरायी जा चुकी है। सागरकी अतल गहराइयोंको नापा जा चुका है। फिर भी मानव अशान्त है।

हमने समस्त नक्षत्रोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया है। संसारके सारे धर्मग्रन्थोंका मन्थन कर डाला है, हर प्रकारके तकनीकी ज्ञानके कोने-कोनेको झाँक लिया है और इस दिशामें सतत प्रयत्नशील हैं। समस्त वेद-पुराण हमें जिह्वापर रटे हुए हैं। संसारका सारा भौतिक ज्ञान हम आत्मसात् कर चुके हैं। पर शान्ति-सरोवर हमसे अभी भी कोसों दूर है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी बीतती जा रही है, किंतु हम प्यासेके प्यासे ही बने हुए हैं। तब हमारी प्यास आखिर तृप्त कैसे हो?

हम अच्छी तरहसे समझ चुके होंगे कि शान्ति एवं सुख भौतिक साधनोंका अम्बार लगानेमें नहीं है। उसका समाधान अध्यात्ममें है। हमारे भीतर है। नाना प्रकारके साधनोंको अपनानेमें नहीं है। बाह्य यात्रामें नहीं है, अपितु अन्तर्यात्रामें है।

हमारे ऋषि-मुनियों एवं सन्तोंने इसकी खोज बहुत पहले कर ली है। उनके द्वारा अपनी अनुभूतियोंके निचोड़को भारतीय धर्मग्रन्थोंमें सँजोकर रख दिया गया है। हमारे पास ज्ञानका अपार खजाना होते हुए भी हम भटक रहे हैं। अशान्त हैं, दुखी हैं।

हमारे वेद, पौराणिक सम्पदा, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत, श्रीरामचरितमानस, योगवासिष्ठ, अष्टावक्र गीता आदि सभी सद्ग्रन्थोंमें ज्ञानकी अपार सम्पदा सँजोयी गयी है। आवश्यकता है उस ज्ञानको अपने जीवन और आचरणमें उतारनेकी।

वास्तवमें हम कौन हैं? हमारा स्वरूप क्या है? इसके ज्ञानसे हम अनभिज्ञ बने रहते हैं। मोह, अज्ञान एवं अविद्याके कारण हम अपने आपको देह मानते रहते हैं, जबकि यह देह हमें प्रकृतिसे प्राप्त होती है। माता-पिताके संयोगसे मिलती है। यह पंच क्लेशों यथा—अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष एवं अभिनिवेशसे आबद्ध होती है। काम, क्रोध, मदादिक षट् रिपुओंके चंगुलमें फँसी हुई है। जन्म-मृत्यु, क्षय-वृद्धि आदि विकारोंसे ग्रस्त है। क्या यही हमारा स्वरूप है? हम शरीरके माध्यमसे जिन कर्मोंका भी सम्पादन करते हैं। उन्हें अपना कृतित्व मानते हुए कर्मफलसे आबद्ध हो जाते हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि कर्म प्रकृतिके द्वारा सम्पादित होते हैं। हमारे स्वरूपमें कोई कर्म नहीं है। स्वरूपत: हम प्रकृतिसे पूर्ण परे हैं। वहाँ न जन्म है, न मृत्यु है, न अन्य कोई विकार ही है। प्रकृति त्रिगुणात्मक है। सत्, रज, तम—ये तीन गुण ही सभी कर्मोंके सम्प्रेरक हैं। हम विशुद्ध आत्मस्वरूप हैं। ईश्वरके अंश हैं। अविनाशी हैं। चेतन, अमल एवं सहज ही सुखकी राशि हैं। श्रीरामचरितमानसके उत्तरकांडमें श्रीकाकभुशुण्डि और गरुड़जीके संवादके माध्यमसे इस रहस्यका उद्घाटन

कराया गया है। यथा—

**सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी॥**
**ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥**
**सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥**
**जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥**
**तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी॥**
**श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥**
**जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी॥**

(रा०च०मा० ७। ११७। १—७)

हम ईश्वरके अंश हैं। चेतन स्वरूप हैं, किंतु जड़ प्रकृतिसे जुड़कर अपने स्वरूपको अविद्याके कारण भूले हुए, जड़से अपना नाता स्थापित करके जड़तामें ही जीवन-यापन करते हुए जन्मपर जन्म गुजारते जा रहे हैं। यह प्रकृति जड़ है। हमारी देह भी जड़ है। इसमें विराजमान आत्मा ही चेतन स्वरूप है। संसारमें एकमात्र उसीकी सत्ता है। शरीर असद् है। नाशवान् है। जन्म-मृत्यु शरीरमें है। स्वरूपसे हम अमर हैं। एकरस हैं। तीनों कालोंमें हैं। प्रकृति प्रतिक्षण परिवर्तनशील है। यह सारा दृश्य-प्रपंच प्रकृतिका विकार है। बनने-मिटनेवाला है। कर्म प्रकृतिमें है। गुण ही गुणोंमें वर्तन करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा गया है कि—

**प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।**
**अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥**

(गीता ३। २७)

मोह एवं अहंकारके कारण हम अपनेको कर्मका कर्ता मानकर उनके फलोंसे बँधते हैं और दुःख-सुख प्राप्त करते हैं।

हम अपने आपको शरीर मानकर प्रकृतिके बन्धनमें बँधे हुए हैं। मोहके अन्धकारके कारण यह बन्धन हमें दिखायी ही नहीं पड़ता। तब इससे मुक्त होनेका यत्न हम कैसे करें?

काश, हम इस बंधनको समझ लें। अपने वास्तविक स्वरूपको पहचान लें। हमें यह बोध हो जाय कि इस प्रपंचमें दिखनेवाला यह शरीर हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। जिनमें हमने अपना ममत्व जोड़ रखा है। वे सब अवास्तविक हैं। क्षणिक हैं। नाशवान् हैं। असद् हैं। वास्तवमें उनका अस्तित्व है ही नहीं। अस्तित्व तो केवल सद् का रहता है। परमार्थ-तत्त्वका रहता है। सद् अविनाशी है। एकरस है। उसीसे सारा दृश्य-प्रपंच प्रकाशमान है। सूर्य, चन्द्र, तारे एवं अग्नि उसीसे प्रभावान् होते हैं। सद्-तत्त्व हमारा स्वरूप ही है। सारा जगत् हममें ही विद्यमान है। सर्वत्र हमारी आत्माका ही पसारा है। हमारा ही स्वरूप है। हम सबमें है। सभी रूपोंमें है, लिप्त कहीं नहीं है। सबसे निर्लिप्त है। प्रकृतिसे परे है। गुणातीत है। अलख है। निरंजन है। अनन्त है। असीम है। मन एवं वाणीसे परे है।

जब हमें अपने इस वास्तविक स्वरूपका बोध हो जाता है, तब फिर सारे कर्म-धर्मसे हम रहित हो जाते हैं। कर्ता प्रकृति है। अहंकारके कारण हम अपनेको कर्ता मान बैठते हैं। हम सभी मोहकी निशामें सोते हैं। एवं तरह-तरहके स्वप्न देखते रहते हैं। यथा—

**मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥**

तब जागें कैसे? क्या उपाय है इसका? श्रीरामचरितमानसमें श्रीलक्ष्मणजी कहते हैं कि—

**जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥**

अर्थात् जब संसारसे पूर्ण उपरति हो जाती है। विषयोंसे विरक्ति हो जाती है, तब कहीं जाकर हमारा जागरण हो पाता है। जाग जानेपर हम आत्मानन्दमें विभोर हो जाते हैं। तब न संसार रह जाता है। और न हमारा यह शरीरबोध ही। फिर हममें कर्म कहाँ रह जायँगे। सब कुछ मात्र चेष्टाएँ बन जायँगी। सारी क्रियाएँ स्वयमेव चलती रहेंगी। हम मात्र उनके द्रष्टा बन जायँगे। सर्वत्र हमारी आत्माका प्रकाश ही प्रतिभासित होगा। संसारका लोप हो जायगा।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हम इस असद् संसारसे उपरत होकर अपने स्वरूपमें कैसे स्थित हों? स्वरूपका बोध कैसे हो? कर्मजालसे मुक्ति कैसे मिले? क्या उपाय है इसका? इस प्रश्नका समाधान उत्तरकांडमें श्रीकाकभुशुण्डिजी करते हुए कहते हैं कि—

**सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा॥**
**रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥**
**जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥**
**सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई॥**

**बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई॥**

(रा०च०मा०७।१२२।६-७, ९—११)

यह है कामादि मनोरोगोंसे मुक्त होनेका उपाय। यह काम सभीको नचाता है।

**को जग काम नचाव न जेही।**

कामसे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधसे बुद्धि भ्रमित हो जाती है। यही जीवके विनाशका कारण है। अत: इस कामको मिटाना परमावश्यक है। कामके कारण ही संसार है। संसारके प्रति ममता होनेके कारण ही हम अपने वास्तविक स्वरूप आत्मतत्त्वको भूले हुए हैं। नयी-नयी कामनाओंके जालमें उलझकर राग एवं द्वेषके वशीभूत होकर नाचते हैं। अत: सद्‌गुरुकी शरणमें जायँ। उनकी वाणीपर विश्वास करें। विषयोंकी आशासे मुक्ति प्राप्त कर लें। ईश्वरका भजन करें। उसके चरणोंमें दृढ़ प्रीति करें। अपने सब कर्म एवं धर्मोंको उसीके चरणोंमें समर्पित कर दें। कर्तापनकी अहंतासे मुक्ति प्राप्त कर लें। कर्मकी कर्ता प्रकृति है और प्रकृति अर्थात् माया परमात्माके अधीन है। इस विश्वासको अपने मनमें दृढ़तासे स्थापित कर लें। अपने स्वरूपको पहचानें। कर्म हमारे स्वरूपमें नहीं है। फिर कर्मफल हमें कहाँसे बन्धनमें बाँध पायेंगे। हम सबसे सर्वथा मुक्त हैं। आनन्दस्वरूप हैं। परमात्माके परम अंश हैं। छुद्र जलबिन्दु नहीं, अपितु अगम समुद्र हैं। बस, इस भावमें डूबनेकी देरी है। फिर लय होनेमें विलम्ब कहाँ? फिर तो सारी दूरियाँ समाप्त ही समझें। हम परमात्माके परम धाममें परम आनन्दमें निमग्न हो जायँगे। सर्वत्र हमारी आत्माका प्रकाश ही होगा। गीता (२।७०)-में कहा है—

**आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।**
**तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥**

स्वरूपबोध हो जानेपर यह हमारी स्थिति हो जायगी। यह है अध्यात्मकी उच्चावस्था। इसे प्राप्त कर लेनेपर संसारके सारे झगड़े समाप्त हो जाते हैं। परम शान्तिकी स्थापना होती है। आज संसार अनेक संघर्षोंसे जूझ रहा है। स्वार्थपरता अपनी जीभ लपलपा रही है। सन्तोष अस्तित्वहीन है। अत: इस आध्यात्मिक ज्ञानमें निमग्न होनेमें ही पूर्ण शान्ति स्थापित हो सकती है।

## अनुभूति ही सार वस्तु है

(श्रीदिलीपजी देवनानी)

**बहुत-सी पुस्तकोंका ज्ञान एवं पाण्डित्य परमात्मासे दूर कर देता है। विद्वान् व्यक्ति असल वस्तुसे वंचित रह जाता है। वह परमात्माका वर्णन तो खूब कर लेता है, पर उस शुद्ध आनन्दका आस्वादन नहीं कर पाता।**

**उपनिषद्‌में ज्ञानके प्रसंगमें बुद्धिकी अप्रतिष्ठा बतायी गयी है। वहाँ बुद्धिकी पहुँच नहीं है, यद्यपि विचार-कालमें शुरुआतमें बुद्धिका उपयोग अवश्य है, परंतु इससे आगे नहीं। प्रधानता तो अनुभूतिकी है।**

**स्वामी विवेकानन्दने अपनी पुस्तक राजयोगमें कहा है अगर, परमात्मा है तो उसे देखना चाहिये, नहीं तो न मानना ही अच्छा है, ढोंगी होनेकी अपेक्षा नास्तिक होना अच्छा है।**

**अनुभूति ही सार वस्तु है, शुष्क तर्क-वितर्क परमात्मासे दूर कर देता है। विवेकचूड़ामणिमें भगवान् शंकराचार्य कहते हैं आत्माको अखण्डानन्दस्वरूप जानकर मनकी वृत्तिको उसमें जोड़कर परमानन्दका भोग करो, थोथी बातोंसे क्या लेना है!**

**व्याख्यान देनेकी कला, शब्द-विन्यासका कौशल, शास्त्रोंकी सुन्दर ढंगसे व्याख्या करना—ये सब तो पण्डितोंके भोगके लिये है, मोक्षके लिये नहीं।**

**रामकृष्ण परमहंस कहते थे अपनेको मारनेके लिये एक चाकू बहुत है, दूसरोंको मारनेके लिये बन्दूक, तलवार सब चाहिये। इसी प्रकार आत्मसाक्षात्कारके लिये तो शास्त्रकी एक-दो बातें ही बहुत हैं; हाँ, दूसरोंका शंका-समाधान करनेके लिये बहुतसे शास्त्रोंकी आवश्यकता है। अनुभवी सन्तोंका संग भी करना चाहिये, जिससे कि बुद्धि शास्त्रोंके जंगलमें भटक न जाय।**

# मनका चिन्तन

( साहित्यवाचस्पति श्रीयुत डॉ० श्रीरंजनजी सूरिदेव )

मन ही मनुष्योंके बन्धन और मुक्तिका कारण है। हमें सुख या दु:खकी अनुभूति मनमें ही होती है। अगर मन ठीक है, तो सब ठीक है। कहावत भी है—***'मन चंगा तो कठौती में गंगा'***। मन भटक रहा हो, स्थिर न हो, तो फिर गंगामें स्नान करनेसे भी शान्ति नहीं मिल सकती और अगर मन शान्त हो तो कठौतीमें रखे जलसे स्नान भी शीतलता और शान्ति प्रदान करता है।

हमें दु:खकी अनुभूति इसलिये होती है कि मनमें सुखकी चाह बनी रहती है। हमें निन्दासे भय इसलिये होता है कि मनमें प्रशंसाकी कामना बनी रहती है। यदि हम निष्काम या अचाह हो जायँ तो फिर हम दु:ख या निन्दाके भयसे सर्वथा मुक्त हो सकते हैं। इसलिये प्रसिद्ध नीतिकार नारायण पण्डित 'हितोपदेश' में कहते हैं—सन्तोषरूपी अमृतसे जिसका मन तृप्त है, जो शान्त चित्तवाला है, उसे जो परम सुख मिलता है, वह सुख धन-लोलुप होकर इधर-उधर दौड़ने-भटकनेवालोंको कभी नसीब नहीं होता।

उपनिषद् कहती है—मन लगामकी तरह है, इसलिये उसे निरन्तर कसते रहना चाहिये। आत्मा रथी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है तो मन लगाम है। जो व्यक्ति अपने लक्ष्य-प्राप्तिसे विचलित हो जाता है या जिसका बुद्धि-रूप सारथि अपने कर्तव्यके प्रति असावधान हो जाता है, तो वह मनकी लगामको इन्द्रियों-जैसे बिगड़े हुए घोड़ेकी इच्छापर छोड़ देता है, तब उसका आत्मारूपी रथी शरीर, इन्द्रिय और मनके सहयोग अथवा उनके सन्तुलनके अभावमें मार्गभ्रष्ट हो जाता है और उसे लक्ष्यविहीन होकर भटकनेकी नियति भोगनेको विवश होना पड़ता है।

गीतामें अर्जुनको भी आशंका हुई थी—मन बड़ा चंचल है, बुद्धिको वह मथकर रख देता है, उससे दृढ़ और बलवान् दूसरा कोई नहीं है। हवाको रोकनेकी भाँति उसे वशमें करना बहुत कठिन है।

तब भगवान्‌ने उसे समझाया था—अभ्यास और वैराग्यसे जो अपने मनको वशमें कर लेता है, वही अपने जीवनके लक्ष्यतक पहुँच पाता है। प्रयत्न ही अभ्यासका दूसरा नाम है। प्रयत्नशील व्यक्तियोंके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं होता। चंचल मनको निश्चल करनेके लिये प्रयत्नशील और निष्काम होना अनिवार्य है। सकाम मन बन्धनमें डालता है, और निष्काम मन बन्धनमुक्त करता है—**'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।'**

आचार्य शंकर कहते हैं—ज्ञानेन्द्रियाँ और मन ही 'मैं' और 'मेरा' आदि विकल्पों या भावनाओंके कारण हैं। मनके अतिरिक्त अविद्या और कुछ नहीं है, वह अविद्याका ही दूसरा रूप है। अविद्या या अज्ञानता ही हमें भौतिक लिप्साकी ओर ले जाती है। जिस प्रकार मेघ वायुके द्वारा आता और उसीके द्वारा चला जाता है, उसी प्रकार मनसे बन्धनकी कल्पना होती है और उसीसे मोक्ष भी कल्पित होता है। शुद्ध मन मुक्तिका कारण है और अशुद्ध मन बन्धनका।

आचार्य शंकर तो यहाँतक कहते हैं, मन नामका महाभयंकर बाघ विषयके जंगलोंमें विचरण करता है, इसलिये जो मुक्तिकामी मनुष्य है, उन्हें विषय-वनमें कभी नहीं जाना चाहिये। सभी प्रकारके अराष्ट्रीय या असामाजिक तत्त्वोंकी उत्पत्ति मनसे ही होती है। मन ही सम्पूर्ण स्थूल-सूक्ष्म विषयों, शरीर, वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, जाति आदि भेदों तथा विभिन्न प्रकारके गुणों, कर्मके कारणों और कर्मफलोंको उत्पन्न करता है। संक्षेपमें यह कि समस्त संसार मनोराज्यकी ही कल्पनामात्र है।

मन या अन्त:करणकी प्रसन्नता होनेपर सभी दु:खोंका विनाश हो जाता है और जिसका चित्त प्रसन्न होता है, उसकी बुद्धि स्थिर होती है। जिस व्यक्तिका मन संयत नहीं होता, जिसकी इन्द्रियाँ असंयत होती हैं, उसमें निर्णय करनेवाली बुद्धिका अभाव होता है, उसका अन्त:करण भावनाहीन होता है। जो मनुष्य भावना या विचार करनेकी शक्तिसे रहित होता है, उसे बराबर अशान्तिकी अनुभूति होती है और जो अशान्त होता है, उसे कभी सुख नहीं मिलता।

जिसका मन जितना अशान्त होता है, वह परम सुखसे उतना ही दूर रहता है। इसीलिये ऋषि प्रार्थना करते हैं—मेरी वाणी मेरे मनमें स्थिर हो जाय और मेरा मन मेरी वाणीमें स्थिर हो जाय। मनका भाव शुद्ध है तो बाहरी दिखावेकी कोई आवश्यकता नहीं है और बाहरी दिखावा भी व्यर्थ है, यदि मनके भीतर गाँठ बँधी है। परमात्मा या परमसुखकी प्राप्ति शुद्ध मनसे ही हो सकती है।

# जपयोग

( श्रीब्रह्मबोधिजी )

ईश्वरप्राप्ति, स्वर्गप्राप्ति या निर्वाणकी प्राप्ति आदिके लिये जो साधना की जाती है, उसमें एक है ईश्वरके नामका निरन्तर जप और स्मरण। इसके लिये प्राय: लोग माला जपनेका अभ्यास करते हैं। लेकिन माला बहुत देरतक जपना कठिन है; क्योंकि माला फेरते-फेरते उँगलियाँ दुख जाती हैं। फिर माला जपनेमें एक हाथ तो व्यस्त हो ही जाता है, जिससे काम करनेमें भी कठिनाई होती है। दूसरी समस्या यह है कि बहुत-से लोग यह दिखाना चाहते हैं कि वे धार्मिक व्यक्ति हैं तथा ईश्वरका नाम इत्यादि जपते हैं। ऐसी स्थितिमें ईश्वरको स्मरण करने और उनके नामका जप करनेका एक बहुत ही अच्छा तरीका है, वह है अपनी साँसोंके साथ ईश्वरके किसी नामका तालमेल बिठा लेना और मौनभावसे जप करते रहना। श्वास अन्दर जाय तो 'राम' नामका मौन भावसे उच्चारण हो गया और जब श्वास बाहर आये तो फिर उसके साथ रामनामका मौन उच्चारण हो गया। किसीको पता भी नहीं चला, यानी दिखावा भी नहीं हुआ।

साँसोंके साथ लम्बे मन्त्रोंका तालमेल नहीं बैठता। साँसोंके साथ ईश्वरके सभी नामोंका तालमेल बिठाना भी थोड़ा कठिन होता है। लेकिन कुछ नाम ऐसे हैं, जो साँसके आवागमनके साथ जुड़ जाते हैं। राम-नाम उनमेंसे एक है। यह मान्यता है कि भगवान् शिव भी रामनामका जप करते हैं। इस कारण इस नामका जप शिवभक्त लोगोंके द्वारा भी किया जा सकता है, यद्यपि उनके मनमें छवि भगवान् शिवकी ही रहती है। आप किसी भी ईश्वररूपकी साधना करते हों, राम-नामका जप करते हुए अपने इष्टदेवका ध्यान कर सकते हैं और यह नाम उन्हीं परमेश्वरका है, जिनकी आप आराधना करते हैं—ऐसा सोच सकते हैं।

'रामचरितमानस' रचनेवाले महान् कवि और भक्त गोस्वामी तुलसीदासजी भी जप-योगी थे। उन्होंने अपने बारेमें लिखा—कलियुगमें राम-नाम मनोवांछित फल देनेवाला कल्पवृक्ष है और अत्यन्त कल्याणकारी है। मैं भाँगके समान (तुच्छतम) तुलसीदास, नामका स्मरण करते-करते तुलसीके समान (पवित्र) हो गया।

**नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।**
**जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥**

(रा०च०मा० १। २६)

ईश्वरके नाम-जपकी महिमाके बारेमें तुलसीदासजीने अन्य भी कई स्थलोंपर लिखा है—

निर्गुण और सगुण ब्रह्म दोनों ही जाननेमें सुगम नहीं हैं, लेकिन नाम-जपसे दोनोंको आसानीसे जाना जा सकता है। इसी कारण मैंने राम-नामको निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्मसे बड़ा कहा है।

**मोरें मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥**

(रा०च०मा० १। २३। २)

राम-नामरूप मणिको मुखरूपी द्वारकी जीभ-रूपी दहलीजपर दीपरूपमें स्थापित करनेसे अन्दर और बाहर चारों ओर प्रकाश-ही-प्रकाश हो जाता है।

**राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।**
**तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥**

(रा०च०मा० १। २१)

जो मनुष्य परमात्माके गूढ़ रहस्य जाननेकी इच्छा रखते हैं, वे नामको अपनी जीभसे जपकर परमात्माके दिव्य रहस्यको जान जाते हैं। सांसारिक सुखोंको चाहनेवाले साधक भी निरन्तर नाम-जप करते हुए अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त करके सिद्ध हो जाते हैं।

**जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥**
**साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥**

(रा०च०मा० १। २२। ३-४)

अपने दु:खोंसे मुक्ति चाहनेवाले मनुष्य भी जब नाम-जप करते हैं, तो उनके बड़े-से-बड़े संकट मिट जाते हैं, और वे सुखकी प्राप्ति करते हैं।

**जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥**

(रा०च०मा० १। २२। ५)

वैसे तो चारों युगोंमें नामका प्रभाव होता है, परंतु

कलियुगमें विशेष रूपसे नामके अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा उपाय नहीं है।

**चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥**

(रा०च०मा० १।२१।८)

जो मनुष्य भोग और मोक्षकी सभी प्रकारकी कामनाओंसे रहित होकर भक्तिरसका निरन्तर पान करते रहते हैं, ऐसे मनुष्योंका मन नामके सुन्दर प्रेमरूपी अमृतके सरोवरमें मछलीके समान रहा करता है यानी नामसे कभी विलग नहीं होता।

**सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।**
**नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन॥**

(रा०च०मा० १।२२)

ध्रुवजीने नामका जप करके अचल अनुपम स्थान ध्रुवलोकतक प्राप्त किया। नीच अजामिल, गज और वेश्या भी श्रीहरिके नामके प्रभावसे पापमुक्त हो गये। मैं नामकी महिमा कहाँतक कहूँ, राम भी अपने नामके गुणोंका वर्णन नहीं कर सकते हैं।

**ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥**
**अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥**
**कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥**

(रा०च०मा० १।२६।५,७-८)

महाभारतमें भी जप-योगपर अच्छी चर्चा है। उस चर्चाका अन्तर्वर्ती एक आख्यान महाभारतके शान्तिपर्वसे यहाँ उद्धृत किया जाता है—

युधिष्ठिरने भीष्मजीसे पूछा—जप करनेवालोंको किस फलकी प्राप्ति होती है? उन्हें किन लोकोंमें स्थान मिलता है? जपकी विधि क्या है? जापक किसे कहते हैं? और जप करनेयोग्य मन्त्र क्या है? ये सारी बातें मुझे बताइये।''''

भीष्मने कहा—इस विषयमें जानकार लोग यम, काल और ब्राह्मणके संवादरूपमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। हिमालयके पास एक महान् यशस्वी ब्राह्मण रहता था। वह पिप्पलादका पुत्र था और कौशिक वंशमें उत्पन्न हुआ था। एक बार वह गायत्रीमन्त्रका जप करता हुआ तपस्यामें प्रवृत्त हुआ। तदनन्तर सावित्रीदेवीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—ब्रह्मर्षे! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, बताओ क्या चाहते हो? तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ?

देवीके ऐसा कहनेपर वह धर्मात्मा ब्राह्मण बोला—शुभे! इस मन्त्रके जपमें मेरी इच्छा बराबर बढ़ती रहे, मनकी एकाग्रतामें दिनोदिन उन्नति हो। यह सुनकर देवीने मधुर वाणीमें उत्तर दिया—तुम जैसा चाहते हो, वही होगा। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगी, जिससे तुम्हें नित्यसिद्ध ब्रह्म-धामकी प्राप्ति होगी। इसके सिवा इस समय जो तुमने मुझसे वरदानके रूपमें माँगा है, वह भी पूरा होगा। तुम एकाग्रचित्त होकर नियमपूर्वक जप करो। धर्म स्वयं तुम्हारे पास आयेगा। काल, मृत्यु तथा यम भी तुम्हारे निकट पधारेंगे। यहाँ उन लोगोंके साथ तुम्हारा धर्मके विषयमें विवाद होगा।

भीष्म कहते हैं—यह कहकर सावित्रीदेवी अपने धामको चली गयीं। इधर वह सत्य-प्रतिज्ञ ब्राह्मण भी जप करता रहा। वह मन और इन्द्रियोंको सदा वशमें रखता था, क्रोधको जीत चुका था और दूसरोंके दोष नहीं देखता था। इस प्रकार जब उसका नियम पूर्ण हो गया तो धर्मने प्रसन्न होकर उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—ब्राह्मण! मेरी ओर तो देखो, मैं साक्षात् धर्म हूँ और तुम्हारा दर्शन करने आया हूँ। इस जपका जो कुछ फल तुम्हें प्राप्त हुआ है, उसे सुनो। मनुष्य और देवताओंको प्राप्त होनेवाले जितने भी लोक हैं, वे सब तुमने जीत लिये हैं। तुम देवलोकको लाँघकर ऊपरके लोकोंमें पदार्पण करोगे, इसलिये मुने! अब तुम अपने प्राणोंका त्याग दो और जिन लोकोंमें जानेकी इच्छा हो, वहाँ जाओ। इस देहको त्याग देनेके बाद ही उन लोकोंमें आ सकोगे।

तात्पर्य यह कि भगवद्गीता और अन्य ग्रन्थोंने जपको ईश्वर-प्राप्तिके एक सशक्त मार्गके रूपमें मान्यता दी है। अत: कल्याणकामी साधकोंको श्रद्धापूर्वक अपनी रुचिके अनुरूप भगवन्नामके जपका अधिकाधिक प्रयत्न करना चाहिये। इस समय कोरोना महामारीके कारण आवागमनमें अनेक बाधाएँ आती रहती हैं। अत: साधकोंके लिये जपयज्ञद्वारा आध्यात्मिक उन्नतिका एक अच्छा अवसर प्राप्त है।

तीर्थ-दर्शन—

# रामेश्वरम् धाम

( श्रीजयदेवप्रसाद बंसल )
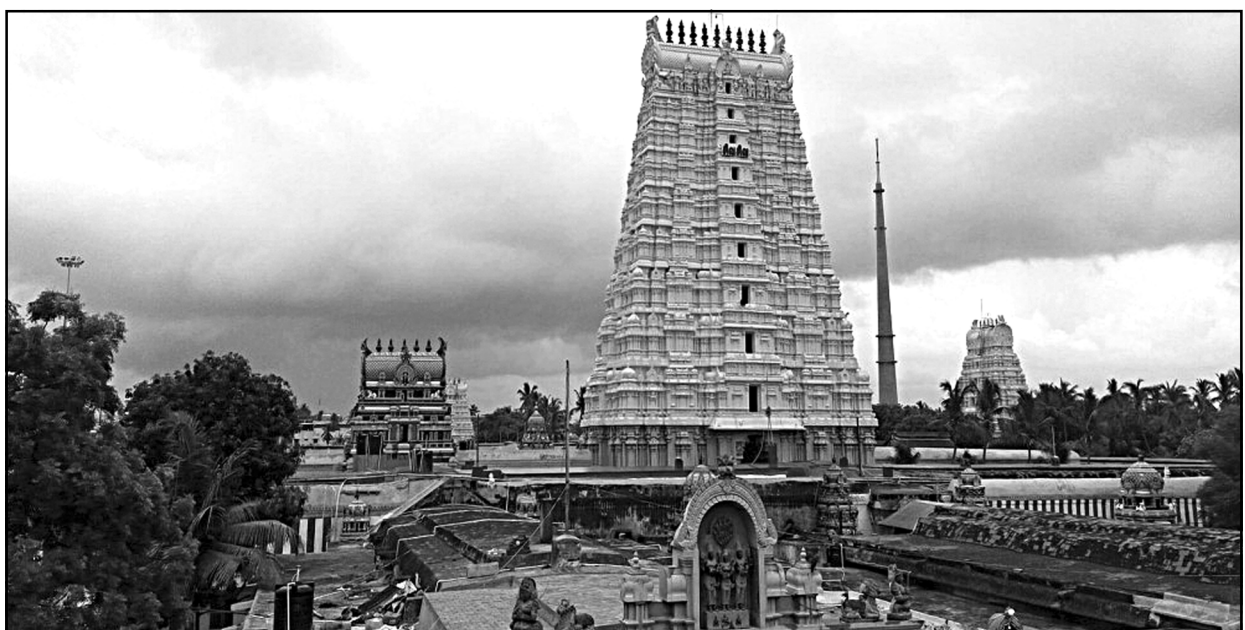
रामेश्वरम्‌के नामसे भारतवर्षमें कोई ऐसा हिन्दू न होगा, जो परिचित न हो। हमारे देश भारतमें प्राचीन कालसे चारों दिशाओंमें चार धाम प्रतिष्ठित हैं—

१-उत्तरके हिमाचल पर्वतमालामें बदरी विशाल

२-पूर्वमें भगवान् जगन्नाथ

३-पश्चिममें द्वारकाधीश

४-दक्षिणमें रामेश्वरम्; जिनमें पहले तीन धाम भगवान् विष्णुके अवतारोंसे सम्बद्ध हैं तथा रामेश्वरम् भगवान् रामसे पूजित भगवान् शिवका धाम है। इसीलिये इसका नाम रामेश्वरम् पड़ा है।

सेतु-बन्धनके समय श्रीरामजीको वह स्थान बहुत ही रमणीय और उत्तम लगा, उन्होंने वानरराज सुग्रीवसे कहा कि इस स्थानकी महिमाका वर्णन नहीं किया जा सकता। मैं यहाँ शिवजीकी स्थापना करूँगा। मेरे हृदयमें यह महान् संकल्प है—

**परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥**
**करिहउँ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदयँ परम कलपना॥**

गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसमें लंकाकाण्डके दूसरे दोहेके अन्तर्गत रामेश्वरम् धामकी महिमाका बखान किया है। भगवान् श्रीराम कहते हैं—

**जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥**
**जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥**
**होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥**
**मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही॥**

## रामेश्वरम्‌में दर्शनोंका क्रम

**स्फटिक लिंग**—रामेश्वरम्‌में स्फटिक लिंगके दर्शनोंका अपना अलग महत्त्व है। इसके दर्शन प्रातः साढ़े चार बजेसे पाँच बजेके बीचमें ही होते हैं। मन्दिर खुलते ही प्रथम इसकी पूजा होती है। इसपर दूधकी धारा चढ़ाते हैं, जो प्रसादके रूपमें दर्शन करनेवालोंको दिया जाता है। इसके बाद समुद्रमें स्नान किया जाता है। समुद्र-स्नानके पश्चात् बाईस कुण्डों (तीर्थों)-में स्नान किया जाता है। रामेश्वरम्‌में सभीका शुल्क लगता है।

जैसे ही आप स्नान करके बाहरसे पूजा-सामग्री नारियल, फूल-माला तथा हरिद्वार, गंगोत्री आदिसे लाया हुआ गंगाजल लेकर अन्दर जायँगे तो टिकट लेना पड़ता है। यहाँ जल मन्दिरके पुजारीद्वारा ही चढ़ाया जाता है। आपसे जल एवं प्रसाद लेकर आपके सामने ही भगवान्‌का अभिषेक किया जाता है।

रामेश्वरम् भगवान्‌के दर्शनोंसे पहले दायीं ओर

विश्वनाथ लिंगके दर्शनोंका प्रावधान है, क्योंकि रामचन्द्रजीके वचनोंके अनुसार पहले हनुमान्जीद्वारा कैलासपर्वतसे लाये गये लिंग (हनुमदीश्वर)-का दर्शन किया जाता है।

बायीं ओर दूसरे घेरेमें जानेपर पार्वतीदेवीका मन्दिर है। वहींपर शयन-कक्ष है। जहाँ भगवान्की सोनेकी मूर्तिको शयन-कक्षमें लाया जाता है और शयन-पूजा होती है तथा सभीको प्रसाद दिया जाता है। इसी प्रकार प्रातः भगवान्की मंगला आरती होती है—इन दोनोंका दर्शन जरूर करना चाहिये।

## रामेश्वरम्में हनुमान्जीके विग्रह

मन्दिरके पूर्वी द्वारके दायीं ओर हनुमान्जीका अद्भुत मन्दिर है, जिसका आधा हिस्सा पातालमें जलके अन्दर है तथा आधा हिस्सा (धड़) ऊपर है, जिसके दर्शन होते हैं। यहाँ हनुमान्जीके उग्र रूपके दर्शन होते हैं। यहाँपर हनुमान्जीद्वारा कैलाससे लाया गया दूसरा शिवलिंग भी है।

**साक्षी हनुमान्—**रामझरोखा (गन्धमादन) जानेके रास्तेमें मद् हनुमान्का मन्दिर है, यहाँ हनुमान्जीके बालरूपके दर्शन होते हैं। रामझरोखेमें भगवान्के चरणचिह्नोंके दर्शन होते हैं।

**पंचमुखी हनुमान्—**पंचमुखी हनुमान्के मन्दिरमें ही तैरनेवाले पत्थरोंके दर्शन होते हैं। ऐसी मान्यता है कि ये वही पत्थर हैं, जो भगवान् श्रीरामद्वारा लंकापर चढ़ाईके समय राम-नाम लिखकर नल-नीलद्वारा समुद्रपर सेतुनिर्माणमें प्रयुक्त हुए थे। यहाँपर अभी १८फुट ऊँचा हनुमान्-विग्रहका नवनिर्माण कराया गया है।

**श्रीहनुमान् कुण्डतीर्थ—**यह मन्दिर उत्तर पूर्व दिशामें स्थित है।

## रामेश्वरम्में अन्य मन्दिर

**एकान्तनाथ मन्दिर—**वैसे तो रामेश्वरम्की भूमिका कण-कण मन्दिर है, जिनमें मुख्य एकान्तनाथ रामेश्वर मन्दिर है, यहाँपर भगवान् राम भाई लक्ष्मणसे युद्धकी भूमिकापर चर्चा कर रहे हैं।

**कोदण्डरामजीका मन्दिर—**यहाँपर लंकापति रावणके भाई विभीषणने रामकी शरण ली थी तथा भगवान् रामने समुद्रके जलसे तिलक करके उन्हें लंकाका राजा घोषित कर दिया था।

**धनुष्कोटि—**रामेश्वरम्के साथ-साथ धनुष्कोटिका भी बहुत महत्त्व है, यहाँपर दो समुद्रोंका संगम है—बंगालकी खाड़ी और महोदधि। सन् १९६४ई० में समुद्री तूफानमें रामेश्वरम्से इसका सम्पर्क टूट गया था और वहाँके मन्दिर भी टूट गये थे। वहाँ अभी मछुवारोंकी बस्ती है, और कुछ नहीं है।

रामेश्वरम्के दर्शन पूर्ण करनेपर ६० कि०मी०पर रामनाद (रामनाथपुरम्) शहर है। शहरसे लगभग १० कि०मी०पर त्रिप्लीनी नामकी जगह है। वहाँपर भगवान् राम दर्भ-शयन करके समुद्रसे लंका जानेके लिये मार्ग देनेकी प्रार्थना करते लेटे थे। जब समुद्र नहीं माना तो भगवान्ने अपना विराट् रूप समुद्रको दिखाया और यह बताया कि मैं ही रामरूपमें विष्णुका अवतार हूँ, वहीं विष्णुरूपके शेषशय्यापर भगवान् दर्शन दे रहे हैं। इसी मन्दिरमें कोदण्डराम, आदि-जगन्नाथ, साक्षी गोपाल, पद्मावती देवी, महालक्ष्मी आदिके मन्दिर हैं। कहते हैं यहींपर महाराजा दशरथने पुत्रप्राप्तिके लिये तपस्या की थी।

यहाँसे ५ कि०मी०पर हनुमान्जीका मन्दिर है, वहीं लंका जलानेके पश्चात् हनुमान्जी कूदकर इस पार आये थे। इस स्थानको सेतुकर कहते हैं।

**देवीपत्तनम्—**रामनादसे देवीपत्तनम् लगभग २० कि०मी० दूर है। यहाँ भगवान् रामने नवग्रहोंका पूजन किया था। यहाँ समुद्रमें नवग्रहोंके पाषाण खड़े हैं। यहींपर दुर्गादेवीने महिषासुरका वध किया था, इसीलिये यह स्थान देवीपत्तनम् नामसे प्रसिद्ध हो गया।

**रामेश्वरम् मन्दिर—**यह मन्दिर समुद्रके किनारे लगभग बीस बीघेके विस्तारमें है। मन्दिरके चारों ओर ऊँचा परकोटा है। इसमें पूर्व तथा पश्चिममें ऊँचे गोपुर हैं। पूर्वद्वारका गोपुर दस मंजिलका और पश्चिम द्वारका गोपुर सात मंजिलका है। पश्चिमद्वारसे भीतर जानेपर तीन ओर मार्ग जाता है—सामने, दायें और बायें। मन्दिरके पश्चिम द्वारसे प्रवेश करके जो मार्ग बायीं ओर गया है, उससे प्रदक्षिणा करते हुए आगे जाना चाहिये। इन मार्गोंके दोनों ओर ऊँचे बरामदे हैं और ऊपर छत है। मार्गमें दोनों ओर स्तम्भोंमें सिंहादिकी सुन्दर मूर्तियाँ बनी हैं। श्रीरामेश्वर मन्दिरके सम्मुख स्वर्णमण्डित स्तम्भ है, उसके पास ही नन्दीकी श्वेतवर्णकी विशाल मृण्मयी मूर्ति है।

# दैवी और आसुरी सम्पदाके ज्ञानके लिये गीता

( डॉ० श्रीप्रभुनारायणजी मिश्र )

प्राय: देखा जाता है कि व्यक्ति कठिन परिस्थितियों और दीन-हीन दशामें पैदा होकर भी संसारमें बड़े-से-बड़ा कार्य कर गुजरता है। वहीं साधनसम्पन्न रहते हुए कुछ लोग कुछ नहीं कर पाते। जिनमें अन्दर शक्ति है, वे ही जीवन-संग्रामके सफल योद्धा सिद्ध होते हैं। अर्जुन अपने जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण युद्ध लड़ने जा रहा है। उसके पास दिव्यास्त्रोंकी कमी नहीं है। भगवान् शिवको प्रसन्न करके उसने पाशुपतास्त्र प्राप्त कर लिया है, जिससे सम्पूर्ण सृष्टिको ही नष्ट किया जा सकता है, परंतु युद्ध जीतनेके लिये अस्त्र-शस्त्र ही पर्याप्त नहीं हैं। मनुष्यके अन्दर भी शक्ति होनी चाहिये। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको दैवी और आसुरी सम्पत्तियोंका उपदेश करते हैं, जिससे वह दैवी सम्पत्तिको ग्रहण कर सके तथा आसुरी सम्पत्तिका परित्याग कर सके। भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायके श्लोक एक, दो और तीनमें श्रीकृष्णने दैवी सम्पत्तियोंका उपदेश किया है। श्लोक चारमें आसुरी सम्पत्तियोंका उल्लेख है। दैवी सम्पत्तियाँ छब्बीस हैं और आसुरी छ:। आसुरी सम्पत्तियाँ हमारा विनाश करती हैं तथा दैवी सम्पत्तियाँ हमें संसार-समरमें विजय दिलाती हैं। आसुरी सम्पत्तियाँ संख्यामें कम हैं, पर हैं घोर दु:खदायी। तो आइये, पहले आसुरी सम्पत्तियोंका ही ज्ञान प्राप्त कर लें। बचना इन्हींसे है।

दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता तथा अज्ञान—ये छ: आसुरी सम्पत्तियाँ हैं। दुर्गुणी होते हुए भी अपनेको सद्गुणी प्रदर्शित करना दम्भ है। गुरूरको दर्प कहते हैं। अपने पद, प्रतिष्ठा तथा स्थितिद्वारा दूसरोंको आहत करना दर्पका ही स्वरूप है। अभिमानी अपनेको श्रेष्ठ मानता है। वह अपनी आत्मप्रशंसामें नित्य मग्न रहता है। क्रोधकी चर्चा पहले आ चुकी है। क्रोध व्यक्तिका घोर शत्रु एवं विनाशक है। कठोरता कई प्रकारकी हो सकती है। क्रूरता, धृष्टतापूर्ण कार्य, आहत करनेवाली भाषा आदि कठोरताके विविध स्वरूप हैं। वास्तविकताको न देखना, स्पष्टको भी अस्पष्ट बना देना तथा सत्के स्थानपर असत्को ही सत् मान लेना अज्ञानकी विभिन्न परिणतियाँ हैं। आसुरी सम्पत्ति बाँधती है, मार्गमें कण्टक बिछाती है तथा मनको अशान्त करती है।

दैवी सम्पदा निम्नलिखित हैं—१-अभय, २-अन्त:करणकी पवित्रता, ३-ज्ञानयोगमें दृढ़ स्थिति, ४-दान, ५-दम, ६-यज्ञ, ७-स्वाध्याय, ८-तप, ९-आर्जव (सरलता), १०-अहिंसा, ११-सत्य, १२-अक्रोध, १३-त्याग, १४-शान्ति, १५-अपैशुन (किसीकी निन्दा न करना), १६-दया, १७-अलोभ, १८-कोमलता, १९-लज्जा, २०-अचपलता, २१-तेज, २२-क्षमा, २३-धैर्य, २४-शौच, २५-अद्रोह तथा २६-नातिमानिता (अपनेको पूज्य न मानना, अहंकाररहित होना)।

दैवी सम्पत्तियोंमें पहला स्थान अभयका तथा अन्तिम नातिमानिताका है। ऊपर दिये क्रममें ही इनका उल्लेख गीतामें किया गया है। यह क्रम विशिष्ट है। यदि हमारे जीवनमें अभय नहीं तो हम किसी भी कार्यकी शुरुआत नहीं कर सकते। जितना बड़ा कार्य होगा, हमारी हिम्मत भी उसी अनुपातमें होनी चाहिये। अभय वह इंजन है, जो हमारी गाड़ीको आगे खींचता है। अन्तिम दैवी सम्पदा है—नातिमानिता। इसका अर्थ है—अपनेको पूज्य या माननीय न मानना तथा अहंकाररहित होना। अहंकारी व्यक्ति अपना विनाश स्वत: कर लेता है। यदि किसीसे घोर शत्रुता भुनानी है तो उसमें मात्र अहंकार पैदा कर दीजिये। शेष कार्य अहंकार स्वत: कर देगा। जहाँ अभय हमें अग्रगति प्रदान करता है, वहीं नातिमानिता गिरनेसे हमारी रक्षा करती है। सारी दैवी सम्पत्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ-एककी यहाँ चर्चा की जा रही है।

**दान—**दान एक महत्त्वपूर्ण दैवी सम्पदा है। ध्यान रखिये, दान आप दूसरोंके लिये नहीं देते, अपने लिये देते हैं। जो कुछ आप दानमें देते हैं, वह लौट-लौटकर, कई गुना होकर आपके पास वापस आता है। यह आवश्यक

नहीं है कि उसीसे वापस आये जिसे आपने दिया है, पर कहीं-न-कहींसे वापस अवश्य आता है। आप धन देंगे, धन आयेगा। मान देंगे, मान आयेगा, गाली देंगे, गाली आयेगी। युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें श्रीकृष्णने दान देनेका कार्य दुर्योधनको सौंप दिया। वह इस मनोवृत्तिके साथ अधिक-से-अधिक दान बाँटता रहा कि युधिष्ठिरका खजाना खाली हो जाय। जैसे-जैसे वह दान बाँटता रहा, वैसे-वैसे युधिष्ठिरका खजाना बढ़ता रहा। वह परेशान होकर श्रीकृष्णसे कहता है कि मुझे ज्ञात नहीं था कि युधिष्ठिर इतना समर्थ और धनी है। उसका खजाना खाली होनेका नाम ही नहीं ले रहा है। श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर इतना धनी था ही नहीं, तुमने दान दे-देकर उसे धनी बना दिया। तुम्हें यह वरदान है कि जो कुछ तुम दोगे, वह बढ़ता जायगा। तुम्हारे दान देनेसे युधिष्ठिरका खजाना बढ़ रहा है तथा उसे शुभकामना एवं आशीर्वाद भी प्राप्त हो रहे हैं। वस्तुत: यह वरदान मात्र दुर्योधनके लिये नहीं है। यह हर व्यक्तिके लिये है। जो आप देंगे, वह बढ़ेगा और लौटकर आपके पास वापस आयेगा।

**स्वाध्याय**—स्वाध्यायके दो अर्थ हैं—श्रेष्ठ ग्रन्थोंका अध्ययन करना तथा अपना स्वयंका अध्ययन करना। श्रेष्ठ ग्रन्थोंका अध्ययन करनेसे हम जीवनके प्रति दृष्टि प्राप्त करते हैं तथा खुदका अध्ययन करके हम अपनी कमियोंसे परिचित होते हैं। यदि स्वका अध्ययन, मूल्यांकन और सुधार न करते रहें तो प्रगति नहीं हो सकती। व्यक्ति शास्त्र पढ़ता है, ध्यान लगाता है, जीवनमें गुणोंका अभ्यास करता है, अपने आपको जानना चाहता है। उसकी राहोंमें विघ्न क्या हैं? क्यों हैं? कैसे मिटें? वह यह सब जानना चाहता है। वह स्वाध्यायसे ही सम्भव है। पठन, पाठन, चिन्तन, मनन सब स्वाध्यायके अंग हैं।

**तप**—जैसा बनना चाहते हैं, वैसा बननेके लिये घोर परिश्रम करना तप है। सहनशक्ति विकसित करनेको भी तप कहते हैं। तपसे गुणोंका विकास किया जा सकता है। जीवनमें विषम परिस्थितियाँ आती ही हैं, तपकी शक्तिद्वारा ही उनका मुकाबला किया जा सकता है। दैवी गुणोंका अभ्यास करना, अहंभावको मिटाना, मान-अपमानमें समचित्त होना, जो भी मिले उसे मुसकराकर स्वीकार कर लेना आदि तपसे ही सम्भव है।

**आर्जव ( सरलता )**—निष्कपट तथा सरल स्वभावको आर्जव कहते हैं। स्पष्टवादिता, विनम्रता, सरल हृदयता, छल-प्रपंचरहित होना आर्जवके ही विविध आयाम हैं। सरलता व्यक्तिको ईश्वरत्वके निकट ले जाती है। सरल हृदय व्यक्तिसे सभी प्रेम करते हैं।

**अपैशुन**—अपैशुनका अर्थ है कि किसीकी बुराई न करना, विशेषरूपसे उसके पीठ पीछे। जब हम किसीकी निन्दा करते हैं तो हमारी दृष्टि उसके दुर्गुणोंपर होती है। अत: वे दुर्गुण अपने व्यक्तित्वमें भी आ जाते हैं। जब हम किसीकी निन्दा करते हैं तो हम अपनेको उससे श्रेष्ठ मानते हैं। अपनेको श्रेष्ठ माननेका भाव अहंकारको जन्म देता है। यदि हम कोई बात किसी व्यक्तिके विषयमें कहते हैं तो वह बात उस व्यक्तितक कभी-न-कभी अवश्य पहुँचती है, उसमें कुछ नमक-मिर्च भी लग जाता है। यदि हम किसीकी निन्दा कर रहे हैं तो वह उस व्यक्तितक पहुँचेगी अवश्य। तब वह व्यक्ति हमारा मित्र नहीं रहेगा—शत्रु बन जायगा। जीवन मित्रोंसे सुखद बनता है, शत्रुओंसे नहीं।

**अलोभ**—कामनाओं का न होना ही असली अलोभ है। नित्यतृप्त ही अलोभी है। जब कामना एवं तृष्णा समाप्त हो जाती है तो व्यक्तिके मनसे लोभ समाप्त हो जाता है। प्रिय और अप्रियके प्रति जो सम हो गया है, वह फिर किसीकी ओर तरसाई नजरोंसे नहीं देखेगा। राग तथा द्वेषके प्रति जो सम हो जाता है, वह अलोभमें स्थित हो जाता है।

कुछ लोग तर्क देते हैं कि संसारमें कर्म करनेके लिये लोभका कुछ अंश आवश्यक है। कामनाविहीन कर्म ऐसे व्यक्तियोंकी समझमें नहीं आता। फल लोभके कारण नहीं, कर्मकी पूर्णता, प्रारब्ध एवं ईश्वरकी कृपासे प्राप्त होता है। हमें संकल्पपूर्वक अपना कार्य करके जो भी फल मिले, उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना

चाहिये। लोभ हमें तृप्त नहीं होने देता। कुछ लोग यह भी तर्क देते हैं कि आगे बढ़नेके लिये असन्तुष्ट और अतृप्त रहना आवश्यक है। कल्पना करिये कि आज हम स्थिति 'अ' पर हैं, 'ब' उससे अच्छी स्थिति है तथा 'स', 'ब' से भी अच्छी। इस मान्यताके अनुसार 'अ' से 'ब' पर पहुँचनेका प्रयत्न करनेके लिये हमें वर्तमान स्थिति 'अ' पर अतृप्त और असन्तुष्ट रहना होगा। पुनः 'ब' से 'स' पर जानेकी चेष्टा करनेके लिये यह आवश्यक होगा कि हम 'ब' पर भी असन्तुष्ट रहें। तो क्या और कथित प्रगति करनेके लिये हम पूरे जीवन अतृप्त एवं असन्तुष्ट बने रहनेके लिये अभिशप्त हैं। नहीं, वैकल्पिक दृष्टि यह है कि आज हम जहाँ और जिस स्थितिमें हैं, पूर्ण सन्तुष्ट रहते हुए हम आगेके लिये प्रयत्न जारी रखें। जो कुछ प्राप्त होगा, उसे प्रेमपूर्वक स्वीकार करते हुए चेष्टा करते रहेंगे। यदि असफल हो गये तो भी दुखी नहीं होंगे, पुनः दोगुने उत्साहसे प्रयत्न करेंगे। मनकी यह स्थिति प्राप्त करना कठिन है, पर सुखदायी यही है। अतः अलोभ और तृप्तिके साथ भी प्रगतिकी सीढ़ियाँ चढ़ी जा सकती हैं।

**अचपलता**—चंचलता और उद्विग्नताके अभावको अचपलता कहते हैं। व्यर्थकी चेष्टा, नित नवयोजनाका निर्माण, संकल्प-विकल्पके साथ मनका इधर-उधर भागना आदि चपलता कहलाती है। चपलता एकाग्रताकी शत्रु है। एकाग्रताके अभावमें सिद्धि संदिग्ध हो जाती है। चपल व्यक्ति दीर्घकालतक कोई कार्य नहीं कर सकता। स्थायी सफलताके लिये दीर्घकालतक प्रयत्न करना आवश्यक है। इसलिये चपलता बाधक तथा अचपलता साधक है।

**तेज**—आन्तरिक शक्ति, आन्तरिक ज्योति, आन्तरिक पराक्रम—ये सब तेजके विविध नाम हैं। तेज मनुष्यके तपकी शक्ति है। तेजस्वी व्यक्ति हम उसे कहते हैं, जिसकी उपस्थितिमें अन्य लोग गलत करने तथा कहनेका साहस न कर सकें।

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्रसे सम्बन्धित एक कथा है। एक आदमी अपने मित्रसे कुछ धन उधार लेता है, फिर उसे वापस करनेसे मुकर जाता है। उधार वसूल करनेके लिये दूसरा व्यक्ति न्यायालयमें वाद प्रस्तुत करता है। साक्ष्यके अभावमें उधार दिया जाना प्रमाणित नहीं होता। अन्ततः मुकदमा राजा हरिश्चन्द्रके समक्ष आता है। राजा हरिश्चन्द्रके सामने उधार लेनेवाला व्यक्ति तत्काल यह स्वीकार कर लेता है कि उसने उधार लिया है और वह ऋण वापस कर देगा। हरिश्चन्द्र उस व्यक्तिसे पूछते हैं कि अभीतक तुम ऋण लेना स्वीकार क्यों नहीं कर रहे थे। अब क्यों स्वीकार कर रहे हो? वह व्यक्ति कहता है कि आपके सामने मेरे मुँहसे झूठ निकल ही नहीं सका। इसे कहते हैं तेज कि आपके सामने दूसरा व्यक्ति अनुचित करने और कहनेकी हिम्मत न कर सके। तेजस्विता अपने-आप नहीं आती, इसके लिये तप एवं साधना करनी पड़ती है।

**क्षमा**—अपने प्रति किये गये अपराधको उसी प्रकार भूल जाना, जैसे वह अपराध हुआ ही न हो, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि यदि हम पुलिस अधिकारी या न्यायाधीश हैं तो अपराधीको क्षमा करते रहें। वहाँ न्याय करना और दण्ड देना कर्तव्य है। यदि किसीने अपराध आपके प्रति किया है तो उसे भूल जायँ न कि किसीके द्वारा राष्ट्र और समाजके विरुद्ध किये गये अपराधको। व्यक्तिगत रूपसे किये गये अपराधका दण्ड देना यदि सामाजिक रूपसे आवश्यक हो तो भी अन्दर तटस्थता एवं क्षमाभाव ही रहना चाहिये। बदलेकी भावनासे कार्य करनेवाले लोग हीन होते हैं। क्षमाशील व्यक्ति अन्दरकी शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करता है। यदि हम अपने प्रति किये गये अपराधको भूल जाते हैं तो अन्दर जलती ज्वाला स्वतः समाप्त हो जाती है। हमारी ऊर्जा संरक्षित होती है, जिसका प्रयोग हम अन्य महत्त्वपूर्ण कार्योंमें कर सकते हैं।

**धैर्य**—कर्मकी गति रहस्यमय होती है। प्रायः यह ज्ञात नहीं होता कि कौन-सा कर्म कब और किस रूपमें अपना फल प्रदान करेगा। अतः व्यक्तिको धीरज नहीं खोना चाहिये। धैर्यवान् व्यक्ति थकता नहीं, वह विपत्तिसे घबराता नहीं तथा एक भी पलके लिये कर्तव्यसे हटता

नहीं। धैर्यवान् व्यक्ति कभी हार नहीं मानता, वह मर जाता है परंतु पीछे नहीं हटता। धैर्यवान् अभ्यासमें पूरा जीवन लगानेके लिये उत्साहके साथ प्रस्तुत रहता है। धैर्यवान् व्यक्ति घबराता और उकताता नहीं। धैर्यके बिना महान् कार्योंकी सिद्धि असम्भव है। अत: यह एक महत्त्वपूर्ण दैवी सम्पदा है।

समझदार व्यक्तिको हर दैवी सम्पदाको ठीक-ठीक समझकर उसे ग्रहण करनेका प्रयास करना चाहिये। दैवी सम्पदाएँ भौतिक साधनोंसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अत: हमें दैवी सम्पदाओंको प्राप्त करनेकी चेष्टा भौतिक साधनोंको प्राप्त करनेकी तुलनामें अधिक करनी चाहिये।

भौतिक सम्पदाओंको लोग छीन सकते हैं, परंतु दैवी सम्पदाएँ स्थायीरूपसे आपकी होती हैं। जहाँ दैवी सम्पदा है, वहाँ भौतिक साधन आ जाते हैं, परंतु जहाँ भौतिक साधन हैं, वहाँ दैवी सम्पदाका आना अनिवार्य नहीं है। दैवी सम्पदाके अभावमें भौतिक साधन स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं।

[ प्रेषक—श्रीसंपतकुमार झंवर ]

# कर्मोंका फल तो भोगना ही पड़ेगा

( डॉ० श्रीओमशंकरजी गुप्ता )

भीष्म पितामह रणभूमिमें शरशैय्यापर पड़े थे। थोड़ा-सा भी हिलते तो शरीरमें घुसे बाणोंके कारण भारी वेदनाके साथ रक्तकी धारा बह निकलती।

ऐसी दशामें उनसे मिलने सभी आ-जा रहे थे। श्रीकृष्ण भी दर्शनार्थ आये। उनको देखकर भीष्म जोरसे हँसे और कहा, आइये जगन्नाथ! आप तो सर्वज्ञाता हैं। सब जानते हैं, बताइये मैंने ऐसा क्या पाप किया था, जिसका दण्ड इतना भयावह मिला?

कृष्ण बोले—पितामह! आपके पास वह शक्ति है, जिससे आप अपने पूर्वजन्म देख सकते हैं। आप स्वयं ही देख लेते।

भीष्मने कहा —देवकीनन्दन! यहाँ अकेला पड़ा मैं और कर ही क्या रहा हूँ। मैंने सब देख लिया, अभीतक १०० जन्म देख चुका हूँ। मैंने उन १०० जन्मोंमें एक भी कर्म ऐसा नहीं किया, जिसका परिणाम ये हो कि मेरा पूरा शरीर बिंधा पड़ा है, हर आनेवाला क्षण और ज्यादा पीड़ा लेकर आता है।

कृष्ण—पितामह! आप एक जन्म और पीछे जायँ, आपको उत्तर मिल जायगा। भीष्मने ध्यान लगाया और देखा कि १०१ जन्म पूर्व वे एक नगरके राजा थे। एक मार्गसे वे अपने सैनिकोंकी एक टुकड़ीके साथ कहीं जा रहे थे। एक सैनिक दौड़ता हुआ आया और बोला, 'राजन्! मार्गमें एक सर्प पड़ा है। यदि हमारी टुकड़ी उसके ऊपरसे गुजरी तो वह मर जायगा।'

मैंने कहा, 'एक काम करो। उसे किसी लकड़ीमें लपेटकर झाड़ियोंमें फेंक दो।' सैनिकने वैसा ही किया। उस साँपको एक बाणकी नोकपर उठाकर झाड़ियोंमें फेंक दिया। दुर्भाग्यसे झाड़ी कँटीली थी। साँप उनमें फँस गया। जितना प्रयास वह उनसे निकलनेका करता और अधिक फँस जाता। काँटे उसकी देहमें गड़ गये। खून रिसने लगा, जिसे झाड़ियोंमें मौजूद चींटियाँ चूसने लग गयीं। धीरे-धीरे वह मृत्युके मुखमें जाने लगा। पाँच-छ: दिनकी तड़पके बाद उसके प्राण निकल पाये।

भीष्म—हे त्रिलोकीनाथ! आप जानते हैं कि मैंने जानबूझकर ऐसा नहीं किया। अपितु मेरा उद्देश्य उस सर्पकी रक्षा था। तब ये परिणाम क्यों?

कृष्ण—पितामह! हम जानबूझकर क्रिया करें या अनजानेमें, किंतु क्रिया तो हुई न। उसके प्राण तो गये न। ये विधिका विधान है कि जो क्रिया हम करते हैं, उसका फल भोगना ही पड़ता है। आपका पुण्य इतना प्रबल था कि १०१ जन्म उस पापफलको उदित होनेमें लग गये। किंतु अन्ततः वह फलित हुआ।

संत-चरित—

# सन्त श्रीखुशालबाबा

( श्रीपांडुरंग सदाशिव बह्राणपुरे 'कोविद' )

खानदेशमें 'फैजपूर' नामक एक नगर है। वहाँ डेढ़ सौ साल पूर्व तुलसीराम भावसार रहते थे। इनकी धर्मपरायणा पत्नीका नाम नाजुकबाई था। इनकी जीविकाका धंधा था कपड़े रँगना। दम्पती बड़े ही धर्मपरायण थे। जीविकामें जो कुछ भी मिलता, उसीमें आनन्दके साथ जीवननिर्वाह करते थे। उसीमेंसे दान-धर्म भी किया जाता था।

इन्हीं पवित्र माता-पिताके यहाँ यथासमय श्रीखुशालबाबाका जन्म हुआ था। बचपनसे ही इनकी चित्तवृत्ति भगवद्भक्तिकी ओर झुक गयी थी। यथाकाल पिताने इनका विवाह भी करा दिया। इनकी साध्वी पत्नीका नाम 'मिवराबाई' था।

दक्षिण 'श्रीक्षेत्र पंढरपुर' बहुत प्रसिद्ध है। वहाँ आषाढ़ और कार्तिक शुक्ल पूर्णिमाको बड़ा मेला लगता है। वैष्णव भक्त दोनों पूर्णिमाओंको यहाँकी यात्रा करते हैं। उन्हें 'वारकरी' कहते हैं और यात्रा करनेको कहते हैं 'वारी'।

ऐसी ही एक पूर्णिमाको श्रीखुशालबाबा 'वारी' करने पंढरपुर आये। श्रद्धा-भक्तिसे भगवान् विठ्ठलके दर्शन किये और मेला देखने गये। उन्होंने देखा एक दूकानमें श्रीविठ्ठलका बड़ा ही सुन्दर पाषाण-विग्रह है। बाबाके चित्तमें श्रीविठ्ठलनाथके उस पाषाण-विग्रहके प्रति अत्यन्त आकर्षण हो गया। उन्होंने सोचा पूजा-अर्चाके लिये भगवान्का ऐसा ही विग्रह चाहिये। उन्होंने उसे खरीदनेका निश्चय किया और दूकानदारसे उस विग्रहका मूल्य पूछा।

दूकानदारने मूल्यके जितने पैसे बताये, उतने पैसे बाबाके पास नहीं थे। दूकानदार मूल्य कम करनेपर राजी नहीं था। बाबाको बड़ा ही दु:ख हुआ। उन्होंने सोचा— 'अवश्य ही मैं पापी हूँ। इसीलिये तो भगवान् मेरे घर आना नहीं चाहते।' वे रो-रोकर प्रार्थना करने लगे— 'हे नाथ! आप तो पतितपावन हैं। पापियोंपर आप प्यार करते हैं। बहुत-से पापियोंका आपने उद्धार किया है। फिर मुझ पापीपर हे नाथ! आप क्यों रूठ गये? दया करो मेरे स्वामी! मैं पतित आप पतितपावनकी शरण हूँ।'

बाबाने देखा एक गृहस्थने मुँहमाँगे दाम देकर उस पाषाण-विग्रहको खरीद लिया है। अब उस विग्रहके मिलनेकी कुछ भी सम्भावना नहीं है। बाबा बहुत ही दुखी हो गये। उस विग्रहके अतिरिक्त उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। उनके अन्तश्चक्षुके सामने बार-बार वह विग्रह आने लगा। खाने-पीनेकी सुधि भी वे भूल गये।

रातको कीर्तन सुननेके बाद वह गृहस्थ उस विग्रहको एक गठरीमें बाँधकर और उस गठरीको अपने सिरहाने रखकर सो गया। बाबा भी श्रीविठ्ठलका नाम स्मरण करते हुए एक जगह लेट गये।

भगवान् विठ्ठलने देखा कि धनिक भक्तकी अपेक्षा खुशालबाबाका चित्त उनमें अधिक आसक्त है। विग्रहके बिना वह दुखी हो रहा है। भक्तके दु:खसे दुखी और सुखसे सुखी होना यह भगवान्का स्वभाव है। गीतामें उन्होंने अपने श्रीमुखसे कहा है—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** इस विरुदके अनुसार खुशालबाबाके पास जानेका प्रभुने निश्चय किया।

मध्यरात्रि हो गयी। गृहस्थ सो रहा था। भगवान्ने लीला करनेकी ठानी, लीलामय जो ठहरे। वे उस गठरीसे अन्तर्धान हो गये और बाबा खुशालके पास आकर उनके सिरहाने टिक गये। कहने लगे—'ओ खुशाल! तेरी भक्तिसे मैं प्रसन्न हूँ। देख मैं तेरे पास आ गया।' बाबाने आँखें खोलीं। भगवान्को अपने सिरहाने देखकर उन्हें बहुत हर्ष हुआ। वे प्रेममें उन्मत्त होकर नाचने और संकीर्तन करने लगे।

सुबह वह धनिक भी जागा; उसने अपनी गठरी खोली। देखा तो अन्दर श्रीविठ्ठलका विग्रह नहीं है। वह चौंक गया। वह उसकी खोजमें निकला। घूमते-घूमते

वह बाबाके पास आया। उसने देखा श्रीविग्रह हाथमें लेकर खुशालबाबा नाच रहे हैं। उसने बाबापर चोरीका आरोप लगाया और उनके साथ झगड़ने लगा। बाबाने उसे शान्तिके साथ सारी परिस्थिति समझा दी और वह विग्रह उसे लौटा दिया।

दूसरे दिन रातको भी भगवान्ने ठीक वही लीला की और बाबाके पास पहुँच गये। बाबाने फिर विग्रह उसे लौटा दिया।

अब उस गृहस्थने कड़े बंदोबस्तमें उस विग्रहको रख दिया और सो गया। भगवान्ने स्वप्नमें उसे आदेश दिया कि 'खुशालबाबा मेरा श्रेष्ठ भक्त है। वह मुझे चाहता है और मैं भी उसे चाहता हूँ। अब आदरके साथ जाकर मेरा यह विग्रह उसे समर्पण कर दो। इसीमें तुम्हारी भलाई है। हठ करोगे तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

बाबा खुशालजी भगवान्के विरहमें रो रहे थे। प्रात:काल वह धनिक स्वयं उस श्रीविग्रहको लेकर उनके पास पहुँचा और बाबाके चरणोंमें गिर पड़ा। अनुनय-विनयके साथ उसने वह विग्रह बाबाको दे दिया।

बाबा बड़े आनन्दसे फैजपूर लौट आये। उन्होंने बड़े समारोहके साथ उस श्रीविग्रहकी प्राणप्रतिष्ठा की।

प्रात:काल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर बाबा स्नान करते और तीन घंटे भजन-पूजन करते। तदनन्तर जीविकाका धंधा करते। सायंकाल भोजनके बाद भजन-कीर्तन करते। काम करते समय भी उनके मुखसे भगवान्का नाम-स्मरण अखण्ड चला करता था।

भगवान्की कृपासे यथासमय बाबाके एक कन्या हुई थी, कन्या विवाह-योग्य हो गयी। बाबाकी आर्थिक परिस्थिति खराब थी। पासमें धन नहीं था। विवाह करना आवश्यक था। अन्तमें लखमीचंद नामक एक बनियेसे उन्होंने दो सौ रुपये ऋण लेकर कन्याका विवाह कर दिया।

ऋण चुकानेकी अन्तिम तिथि आ गयी। बाबाके पास कौड़ी भी नहीं थी। बनियेका सिपाही बाबाके दरवाजेपर बार-बार आकर तकाजा करने लगा। बाबाने कहा—'मैं कल शामतक पैसेकी व्यवस्था करता हूँ। आप निश्चिन्त रहिये।'

बाबा दूसरे बनियोंके पास गये, किंतु किसीने भी ऋण देना स्वीकार नहीं किया। पड़ोसके एक-दो गाँवोंमें जाकर बाबाने पैसे लानेकी कोशिश की, किंतु नहीं मिले। दूसरे दिनतक पैसे नहीं लौटाये जाते हैं तो बनिया लखमीचंद उनके घरका नीलाम कर देगा। बाबा चिन्ता करते हुए लौट आये।

इधर भक्तवत्सल भगवान्को भक्तकी इज्जतकी चिन्ता हुई। आखिर ऋण तो चुकाना ही था। क्या किया जाय। भगवान्ने दूसरी लीला करनेका निश्चय किया।

भक्तवत्सल भगवान्ने मुनीमका वेष धारण किया। वे उसी वेषमें लखमीचंदके घर गये। उन्होंने सेठजीको पुकारकर कहा—'ओ सेठजी! ये दो-सौ रुपये गिन लीजिये। मेरे मालिक खुशालबाबाने भेजे हैं। भलीभाँति गिनकर रसीद दे दीजिये।' लखमीचंदने रकम गिन ली और रसीद लिख दी।

भगवान् रसीद लेकर अन्तर्धान हो गये और बाबाकी पोथीमें वह रसीद उन्होंने रख दी।

दूसरे दिन बाबाने स्नान करके गीताकी पोथी खोली। देखा तो उसमें रसीद रखी थी। रसीद देखकर बाबा आश्चर्यचकित हो गये और भगवान्को बार-बार धन्यवाद देकर रोने लगे। बाबाने सोचा, जरूर ही वह बनिया पुण्यवान् है। इसीलिये तो भगवान्ने उसे दर्शन दिये। मैं अभागा पापी हूँ—द्रव्यका इच्छुक हूँ। इसीसे भगवान्ने मुझे दर्शन नहीं दिये। उनके महान् परिताप और अत्यन्त उत्कट इच्छाके कारण भक्तवत्सलने द्वादशीके दिन खुशाल बाबाके सम्मुख प्रकट होकर दर्शन दिये।

उसी गाँवमें लालचन्द नामक एक बनिया, जिसे मराठीमें 'वाणी' कहते हैं, रहता था। उसने नित्य-पूजाके लिये भगवान् राम, लक्ष्मण और भगवती सीताके

सुन्दर-सुन्दर विग्रह बनवाये। रातमें जब वह सो गया, तब भगवान् श्रीरामचन्द्र स्वप्नमें आये और उन्होंने उसको आज्ञा दी, 'लालचन्द! हम तुझपर प्रसन्न हैं; किंतु हमारी इच्छा तेरे घरमें रहनेकी नहीं है। हमारा भक्त खुशाल इसी नगरमें रहता है। उसको तू यह सब विग्रह अर्पित कर। जब भी तुझे दर्शनकी इच्छा हो, तभी वहाँ जाकर दर्शन कर लेना। इसीमें तेरा कल्याण है। मनमानी करेगा तो मैं तुझपर रूठ जाऊँगा।'

सुबह नित्यकर्म करनेके बाद लालचन्द बनिया वे सब विग्रह लेकर बाबाके चरणोंमें उपस्थित हुआ। बाबाको स्वप्न निवेदन करके उसने वे सब विग्रह उनको समर्पित किये।

बाबा खुशाल भक्तिप्रेमसे उन विग्रहोंकी पूजा करने लगे। उन्होंने नगरवासियोंके सम्मुख भगवान्का मन्दिर बनवानेका प्रस्ताव रखा। नगरवासियोंने हर्षके साथ उसे स्वीकार किया और सबके प्रयत्नसे भगवान् श्रीरामका भव्य मन्दिर बन गया। वैदिक पद्धतिसे बड़े समारोहके साथ उन विग्रहोंकी प्रतिष्ठा मन्दिरमें की गयी। आज भी श्रीसन्त खुशालबाबाकी भक्तिका परिचय देता हुआ वह मन्दिर खड़ा है।

वृद्धावस्थामें जब बाबाने देखा कि अब अपनी मृत्यु समीप आ गयी है, तब वे संसारकी सारी आसक्ति स्वरूपतः निकालकर अनन्य चित्तसे भजनानन्दमें निमग्न रहने लगे। कहते हैं, उन्होंने अपना मृत्युकाल निश्चितरूपसे अपने मित्र मनसारामको पहले ही बता दिया था। ठीक उसी दिन कार्तिक शुक्ला चतुर्थी शक १७७२ को भगवान्का नामस्मरण करते हुए बाबा भगवान्की सेवामें सिधार गये।

उनके पुत्रका नाम श्रीहरिबुवा था। वे भी पिताके समान ही बड़े भगवद्भक्त थे। उनके पुत्र रामकृष्ण और रामकृष्णके पुत्र जानकीराम बुवा भी भगवद्भक्त थे।

खुशालबाबाने काव्यरचना भी की है। 'करुणा-स्तोत्र', 'दत्त-स्तोत्र', 'दशावतारचरित' आदि उनके ग्रन्थ हैं। गुजराती भाषामें लिखे हुए उनके 'गरबो' प्रसिद्ध हैं। आज भी तद्देशीय लोग उन्हें गाते हैं।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

## मैं कौन हूँ ?

**एक व्यक्तिने किसीसे पूछा—तुम कौन हो? उसने कहा—**अहं ब्रह्मास्मि। **मैं ब्रह्म हूँ। प्रश्नकर्ताने पूछा—मैं कौन हूँ? उसने कहा—**तत्त्वमसि। **तुम भी वही हो। प्रश्नकर्ताने अपने चारों ओर संकेत करके पूछा—यह सब क्या है? उसने कहा—**सर्वं खल्विदं ब्रह्म। **यह सब ब्रह्म ही है।**

**उस व्यक्तिने किसी औरसे पूछा—तुम कौन हो? उसने कहा—नहीं जानता। प्रश्नकर्ताने पूछा—मैं कौन हूँ? उसने कहा—नहीं जानता। प्रश्नकर्ताने अपने चारों ओर संकेत करके पूछा—यह सब क्या है? उसने कहा—मैं नहीं जानता। मैं इन रहस्योंको समझनेका प्रयास कर रहा हूँ।**

**उस व्यक्तिने एक भीड़से पूछा—तुम कौन हो? कई लोग चिल्ला उठे—मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय, मैं वैश्य, मैं शूद्र, मैं हिन्दू हूँ, मैं मुस्लिम…। उसने आगे पूछा—मैं कौन हूँ? कुछ आपसमें एक-दूसरेसे पूछने लगे और कुछने कहा, पहचानपत्र दिखाओ। उसने चारों ओर संकेत करके पूछा—यह सब क्या है? लोग बोले—यह गुप्ता निवास है, वह शर्मा भवन है, यह एलीट्स क्लब है, वह ब्राह्मण पुरवा है, यह बनिया टोला है, वह ठाकुर पट्टी है…।**

**आध्यात्मिक परम्परामें मनुष्यके तीन वर्ग माने गये हैं—अज्ञानी, जिज्ञासु व ज्ञानी। उपर्युक्त उद्धरणोंमें पहला व्यक्ति ज्ञानी है, दूसरा जिज्ञासु। तीसरी घटनामें भीड़ है। भीड़में शामिल लोगोंको तत्त्वदर्शियोंने अज्ञानी कहा है।—**सिद्धार्थसिंहकी फेसबुक वॉलसे

# संत-वचनामृत

**( वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे )**

❀ शरीरमें जरा, व्याधि और मरण बना रहता है, पर प्रारब्धवश ये क्रियाएँ अनिवार्य हैं—ऐसा मानकर सज्जन लोग उसकी विशेष चिन्ता न करके भगवत्-स्मरणमें मन लगाते हैं। जो सुख-दु:ख आते हैं, प्रभुका कृपाप्रसाद समझकर भोगते हैं। अपने कर्मोंके फलस्वरूप सुख-दु:ख मिलते हैं। दूसरा कोई दु:ख-सुखका दाता नहीं है, ऐसा विश्वास रखनेवाले भी सहर्ष सुख-दु:ख भोगते हैं, पर भक्तजन तो हर परिस्थितिमें अपने इष्टकी कृपाका अनुभवकर आनन्दित रहते हैं।

❀ सिद्धान्त यह है कि प्रभुके दिये हुए धनमें, परिवारमें, शरीरमें हमको सन्तुष्ट रहना चाहिये। जो प्रभुने दिया है, उसमें सन्तुष्ट न होकर जब हम अपने मनमें असन्तोष व्यक्त करते हैं तो प्रभुका अपमान होता है। हमको कृतज्ञ होना चाहिये। भगवान्‌ने कृपा करके जो कुछ दिया है, वह ठीक है। प्रभुको धन्यवाद है। इतना सब कुछ दिया है, यदि हमको और अधिक आवश्यक होगा तो प्रभु हमको और देंगे। ईश्वरकी इच्छामें अपनी इच्छाको, प्रभुकी प्रसन्नतामें अपनी प्रसन्नताको मिला देना चाहिये। जो कुछ सहज प्राप्त है, उसमें ही सन्तुष्ट रहना चाहिये। प्रभुके द्वारा दिये गये धन-जनमें सन्तुष्ट न रहकर हम तरह-तरहकी कामना करते हैं, उसके लिये देवी-देवताओंसे विनय करते हैं। कामनाके पूर्ण न होनेपर अविश्वास हो जाता है, इसलिये यदि कामना हो तो अपने इष्टदेवके सामने निवेदन करना चाहिये। यदि कामनाकी पूर्तिमें आप प्रसन्न रहें, मेरा कल्याण हो तब आप पूर्ण कर दीजिये। आप प्रसन्न न रहें, मेरा कल्याण भी न हो, तो ऐसी कामनाका पूर्ण न होना ही अच्छा है। जिस प्रकार प्रभु प्रसन्न रहें, उसमें ही प्रसन्न रहना है।

❀ ***'जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें।'*** भगवान् कहते हैं कि कोई भी उत्तम वस्तु, ऊँचा पद ऐसा नहीं जिसे मैं अपने भक्तको न दे सकूँ। परंतु अज्ञानवश बालक यदि विष पीनेका आग्रह करे तो माता-पिता उसे विष नहीं देंगे। परंतु भगवान्‌को छोड़कर दूसरे देवता तपके बदले जो माँगो, वही दे देते हैं। फिर उस वस्तुसे याचकका कोई अनिष्ट हो जाय तो उस देवताको चिन्ता नहीं रहती है। पर भगवान् ऐसे दयालु हैं कि वे भक्तको वही वस्तु देंगे, जिससे कल्याण हो। दयामय भगवान् सभी भक्तोंपर सर्वदा कृपा करें।

❀ अपने मनमें प्रेम जाग्रत् हो, इसके लिये भगवत्-कृपा ही कारण है। प्रेमको बढ़ानेके लिये विरह और मिलन जरूरी है। ये भी प्रभुकृपासे ही प्राप्त होते हैं, संसारका, संसारके सुखोंका त्याग जरूरी है। संसारमें ममता न रखकर परिवार-पालन, वर्णाश्रमधर्मका पालन आदि कर्म करना चाहिये। यह भी प्रभुकी प्रसन्नताके लिये।

❀ सभी ग्रन्थोंमें वेद सर्वोपरि हैं। उपनिषद् वेदोंका सार है और उपनिषदोंका सार गीता है। गीता और वाल्मीकि-रामायणका सार भगवत्-शरणागति है। इसलिये जैसे भी हो मन-वाणीसे यही सोचना चाहिये, यही कहना चाहिये कि मैं भगवान्‌की शरणमें हूँ। बार-बार कहनेसे मनपर असर पड़ेगा। विद्वान् बुद्धिमान्‌की शरणागति एक बार कहनेसे हो जाती है, पर हम-सरीखे लोगोंको बार-बार इसलिये कहना चाहिये कि हम दृढ़ प्रतिज्ञावाले नहीं हैं। भूल जानेका हमारा स्वभाव है। अत: **'श्रीकृष्णः शरणं मम। श्रीरामः शरणं मम।'** बार-बार प्रणामादिके समय अवश्य कहना चाहिये।

❀ संसारकी आशा ही बड़ा दु:ख है। संसारसे निराशामें बड़ा सुख है। संसार आशाको पूर्ण नहीं कर सकता है। अत: संसारसे निराश होकर भगवान्‌की आशा करनी चाहिये। भगवान्‌से सब आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं, अत: ***'आशा एक रामजीकी और आशा छोड़ दे।'***

❀ शरणागतके सभी कर्म भगवान्‌को अर्पण हो जाते हैं। शुभ कर्मोंको अर्पण करके यदि कदाचित् कोई अशुभ कर्म बन गया हो तो उसके लिये क्षमा-याचना करनी चाहिये। अबतक मुझसे जो बिगड़ी है, उसे क्षमा करो और ऐसी कृपा करो कि मुझसे अब न बिगड़े। प्रतिकूल कर्म मेरे मन, वाणी और शरीरसे न बनें। मैं आपके आश्रित हूँ। आप मेरे सर्वस्व हैं।

**[ 'परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार ]**

*गो-चिन्तन—*

# गोमाताकी सेवाका चमत्कार

बात लगभग पचीस वर्ष पहलेकी है, मैं सफेद दाग हो जानेके कारण बहुत दुखी एवं परेशान हो गया था। छः वर्षोंतक अनेक डॉक्टरोंकी दवा की, पर कुछ भी लाभ न हुआ। मेरी स्थिति यह हो गयी थी कि कहीं आने-जानेमें बहुत शर्म लगती थी। लोगोंका दृष्टिकोण मेरे प्रति बहुत बदल गया था। वे लोग घृणा तथा उपेक्षाकी दृष्टिसे मुझे देखते थे। इसी कारण मैं अपने खास रिश्तेदारोंके यहाँ भी नहीं जा सकता था। हर वक्त अपने सफेद दागको छिपानेका या उसके निराकरणका उपाय सोचा करता था। घरवालोंसे दवाके लिये पैसा माँगनेमें भी बहुत डर लगता था कि कहीं फटकार न दें। मैं हमेशा एक कमरेमें बैठा रहता था। किसीसे मिलनेकी इच्छा नहीं होती थी। ज्यादा जी ऊबने लगता तो रोने लगता था। रोनेसे जी थोड़ा हलका हो जाता। यही मेरी नित्यकी क्रिया हो गयी। पिताजी बाहर रहते थे। घरपर मैं ही रहता था। घरका सारा काम धीरे-धीरे गड़बड़ होता चला गया। नीबूका बगीचा था, वह भी सूखने लगा। बगीचेमें एक कुआँ था। वह भी सूखने लगा। लज्जावश मैं खेतपर भी नहीं जाता था, अतः खेती भी बरबाद हो गयी। हमारे यहाँ एक आदमी कामपर था, लेकिन आँतकी गड़बड़ीके कारण वह अस्पतालमें मर गया। मैं बहुत दुखी हुआ। उसके न रहनेके कारण अब हमारे यहाँ कोई आदमी गोशालामें गायोंको देखनेके लिये नहीं मिला, इससे गायोंको कष्ट होने लगा। तब मैं ही इस जिम्मेदारीको निभाने लगा।

उसी बीच 'कल्याण'का 'गोसेवा-अंक' हमारे गाँवके एक सज्जनके यहाँ मुझे पढ़नेको मिला। मैंने उसे सरसरी निगाहसे देखा तो मुझे वह बहुत उपयोगी लगा, अतः उसे मैं अपने घर ले आया और निष्ठापूर्वक उसका अध्ययन करने लगा। उसे पढ़नेसे मेरे जीवनमें एक नया मोड़ आ गया।

अब मैं डॉक्टरको दिखानेके बहाने घरसे पैसा माँगकर उसे अपनी गोशालामें खर्च करने लगा तथा निष्ठापूर्वक गौकी सेवा भी करने लगा। मैंने गौको धूपसे बचानेके लिये छायाका तथा पीनेके लिये पानीका उचित प्रबन्ध किया। आजतक जो समय मैं घरमें छिपकर बिताता था, अब वह समय अपनी ही गोशालामें रहकर बिताने लगा। मनको बहुत ही शान्ति मिलने लगी। जो कुआँ सूखा पड़ा था, उसमें पानी निकालनेके उद्देश्यसे मैंने अपने गाँवके दो-चार मित्रोंकी सहायतासे खुदवाना प्रारम्भ कर दिया। गोसेवाका ऐसा चमत्कार हुआ कि अल्प परिश्रमसे ही उसमें पानी भी निकल आया। मेरे मनको अपार खुशी हुई। मैं जान गया कि यह मेरी गौ माताकी कृपासे ही हुआ है। कुएँमें पानी निकलनेसे बगीचा हरा-भरा रहने लगा। खेतमें आने-जानेसे अनाज भी अधिक होने लगा। इस बीच मैंने दवा बिलकुल छोड़ ही दी। गौकी सेवासे धीरे-धीरे मेरे शरीरका सफेद दाग ठीक होने लगा। यह आश्चर्यजनक प्रभाव देखकर गोसेवामें मेरी तन्मयता नित्य-निरन्तर बढ़ने लगी और मैं तन-मन-धनसे अत्यन्त श्रद्धा एवं विश्वासके साथ गोसेवा करने लगा। गौमाताकी सेवाका यह चमत्कार देखकर केवल मैं ही नहीं अपितु सभी हतप्रभ थे। मेरे लिये तो यह नये जीवनकी शुरुआत हो गयी थी।

**—संजीवकुमारसिंह**

## गोभक्तके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है

**गोभक्त मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे प्राप्त होती है। स्त्रियोंमें भी जो गौओंकी भक्त हैं, वे मनोवांछित कामनाएँ प्राप्त कर लेती हैं। पुत्रार्थी मनुष्य पुत्र पाता है और कन्यार्थी कन्या। धन चाहनेवालेको धन और धर्म चाहनेवालेको धर्म प्राप्त होता है। विद्यार्थी विद्या पाता है और सुखार्थी सुख। हे अर्जुन! गोभक्तके लिये यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं है।** [महाभारत, अनुशासनपर्व ८३।५०—५२]

# राग-द्वेष दूर करनेके उपाय

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज )

यह नियम है कि प्राणी जिसके साथ 'मैं'को मिला देता है, वही सत्य प्रतीत होने लगता है और अपनेसे भिन्न समझकर जिसके साथ अपनत्वका सम्बन्ध मान लेता है, उसमें आसक्ति हो जाती है, जिसको पराया समझ लेता है, उसमें द्वेष हो जाता है।

मनुष्यका 'मैं' भाव जगत्‌में अनेक प्रकारसे बँटा हुआ है। मैं ब्राह्मण हूँ, मैं वैश्य हूँ, मैं महत्तर हूँ, मैं हिन्दू हूँ, मैं मुसलमान हूँ, मैं ईसाई हूँ, मैं हिन्दुस्तानी हूँ, मैं यूरोपियन हूँ, मैं अमेरिकन हूँ—इस प्रकार शरीर, जाति, देश, वर्ण, आश्रम और परिस्थिति आदिके साथ 'मैं' को मिलाकर मनुष्य उनमें सद्‌बुद्धि कर लेता है। उन्हींको अपना जीवन मानने लगता है। इस कारण उसको यह बोध नहीं होता कि वास्तवमें मेरी और इनकी न तो स्वरूपसे एकता है और न जातीय एकता है तथा यह भी नहीं जानता कि इनकी स्वीकृति मैंने किसी प्रकारके साधनका निर्माण करके इनसे ऊपर उठने और अपने लक्ष्यतक पहुँचनेके लिये की है।

यद्यपि हरेक प्रकारकी मान्यताके साथ उससे सम्बन्ध रखनेवाला विधान रहता है। जैसे कोई मानता है कि मैं हिन्दू हूँ, तो हिन्दू माननेवालेके लिये जो हिन्दूधर्ममें उसके वर्ण, आश्रमके अनुसार कर्तव्यका विधान किया गया है, उसे भी मानना चाहिये। यदि उसे मान ले तो साधक वर्तमान परिस्थितिकी आसक्तिसे रहित होकर अपने लक्ष्यकी ओर आगे बढ़ जाय, इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि मनुष्यको जो परिस्थिति प्राप्त होती है, वह उसको सदैव अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर करनेके लिये ही होती है, परंतु इस रहस्यको न समझनेके कारण प्राणी उसका सदुपयोग नहीं करता।

यही कारण है कि आज जो अपनेको हिन्दू कहता है, वह हिन्दूपनका अभिमान करके दूसरोंके साथ राग-द्वेष कर लेता है अर्थात् मानने लगता है कि जो हिन्दू हैं, वे तो अपने हैं, जो हिन्दू नहीं हैं, वे पराये हैं। अतः अपनेको हिन्दू माननेवालोंमें आसक्ति और दूसरोंमें द्वेष करने लगता है। यदि वह अपनेको हिन्दू माननेके साथ-साथ उसके विधानको भी मानता तो **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'**—के अनुसार सबमें प्रेम करता, किसीसे भी राग-द्वेष नहीं करता। इसी प्रकार सबमें समझ लेना चाहिये।

महापुरुषोंने जब जो सम्प्रदाय चलाया है, वह मनुष्यको उन्नत बनानेके लिये साधनरूप बनाया है। अतः हरेक सम्प्रदाय, हरेक प्रकारकी मान्यता, अपने-अपने अधिकार, अपनी-अपनी योग्यता और प्रीतिके अनुसार उसे साधन मानकर चलनेवालेके लिये हितकर है। इस दृष्टिसे भी सभी सम्प्रदाय और सभी मान्यताएँ आदर करनेके योग्य हैं।

परंतु जब मनुष्य शरीर, जाति, वर्ण, आश्रम, धर्म, देश और परिस्थितिके साथ एकता मानकर उनमें अभिमान कर लेता है एवं उसके अनुसार अपनेको नाना भावोंमें बाँधकर राग-द्वेष करने लगता है, तब उसका चित्त अशुद्ध होता रहता है।

इसलिये साधकको चाहिये कि विचार और विश्वासके द्वारा यह निश्चय करे कि मैं शरीर नहीं हूँ। यह मनुष्य-शरीर मुझे भगवान्‌की कृपासे साधनके लिये मिला है। यह निश्चय करके शरीरमें या किसी प्रकारकी परिस्थितिमें सद्भाव न करे। उसे अपना जीवन न माने। जो कुछ प्राप्त है, उसका सदुपयोग करे। प्राप्तका सदुपयोग करनेसे और अप्राप्तकी चाह न करनेसे रागकी निवृत्ति हो जाती है। राग निवृत्त हो जानेपर द्वेष अपने-आप मिट जाता है और राग-द्वेषका अभाव हो जानेसे निर्वासना आ जाती है। फिर किसी प्रकारकी चाहका उदय नहीं होता। यही चित्तकी शुद्धि है। चित्तके शुद्ध होनेपर योग, बोध और प्रेम अपने-आप प्रकट हो जाते हैं।

# व्रतोत्सव-पर्व

## सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२१, सूर्य दक्षिणायन, शरदृतु, आश्विन-कृष्णपक्ष

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा रात्रिशेष ५।६ बजेतक | मंगल | उ०भा०रात्रिशेष ५।३६ बजेतक | २१ सितम्बर | **महालयारम्भ, प्रतिपदाश्राद्ध, मूल** रात्रिशेष ५।३६ बजेसे। |
| द्वितीया ,, ५।५८ बजेतक | बुध | रेवती अहोरात्र | २२ ,, | **द्वितीयाश्राद्ध।** |
| तृतीया अहोरात्र | गुरु | रेवती प्रात: ७।७ बजेतक | २३ ,, | **भद्रा** रात्रिमें ६।३७ बजेसे, **तृतीयाश्राद्ध, पंचक** समाप्त प्रात: ७।७ बजे। |
| तृतीया प्रात: ७।१६ बजेतक | शुक्र | अश्वनी दिनमें ८।५९ बजेतक | २४ ,, | **भद्रा** प्रात: ७।१६ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।१बजे, **चतुर्थीश्राद्ध, मूल** दिनमें ८।५९ बजेतक। |
| चतुर्थी दिनमें ८।५८ बजेतक | शनि | भरणी ,, ११।१६ बजेतक | २५ ,, | **वृषराशि** सायं ५।५३ बजेसे, **पंचमीश्राद्ध।** |
| पंचमी ,, १०।५७ बजेतक | रवि | कृत्तिका ,, १।४८ बजेतक | २६ ,, | **श्रीचन्द्रषष्ठी, षष्ठीश्राद्ध।** |
| षष्ठी ,, १।३ बजेतक | सोम | रोहिणी सायं ४।२४ बजेतक | २७ ,, | **भद्रा** दिनमें १।३ बजेसे रात्रिमें २।४ बजेतक, **मिथुनराशि** रात्रिशेष ५।४१ बजे, **हस्तनक्षत्रका सूर्य** रात्रिमें ९।४७ बजे। |
| सप्तमी ,, ३।५ बजेतक | मंगल | मृगशिरा रात्रिमें ६।५७ बजेतक | २८ ,, | **सप्तमीश्राद्ध।** |
| अष्टमी सायं ४।५४ बजेतक | बुध | आर्द्रा ,, ९।१७ बजेतक | २९ ,, | **जीवत्पुत्रिकाव्रत, अष्टमीश्राद्ध, अष्टकाश्राद्ध।** |
| नवमी रात्रिमें ६।२३ बजेतक | गुरु | पुनर्वसु ,, ११।१५ बजेतक | ३० ,, | **कर्कराशि** सायं ४।४६ बजे, **मातृनवमी, नवमीश्राद्ध।** |
| दशमी ,, ७।२५ बजेतक | शुक्र | पुष्य ,, १२।४७ बजेतक | १ अक्टूबर | **भद्रा** प्रात: ६।५४ बजेसे रात्रिमें ७।२५ बजेतक, **दशमीश्राद्ध, मूल** रात्रिमें १२।४७ बजेसे। |
| एकादशी ,, ७।५७ बजेतक | शनि | आश्लेषा ,, १।४९ बजेतक | २ ,, | **महात्मागाँधी-जयन्ती, इन्दिरा एकादशी-व्रत** (सबका), **एकादशीश्राद्ध, सिंहराशि** रात्रिमें १।४९ बजे। |
| द्वादशी ,, ७।५८ बजेतक | रवि | मघा ,, २।२१ बजेतक | ३ ,, | **द्वादशीश्राद्ध, मूल** रात्रिमें २।२१ बजेतक। |
| त्रयोदशी ,, ७।३० बजेतक | सोम | पू०फा० ,, २।२४ बजेतक | ४ ,, | **भद्रा** रात्रिमें ७।३० बजेसे, **सोमप्रदोषव्रत, त्रयोदशीश्राद्ध।** |
| चतुर्दशी ,, ६।३२ बजेतक | मंगल | उ०फा० ,, २।० बजेतक | ५ ,, | **भद्रा** प्रात: ७।१ बजेतक, **कन्याराशि** दिनमें ८।१९ बजे, **चतुर्दशीश्राद्ध।** |
| अमावस्या सायं ५।९ बजेतक | बुध | हस्त ,, १।१४ बजेतक | ६ ,, | **अमावस्या, अमावस्याश्राद्ध, पितृविसर्जन।** |

## सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२१, सूर्य दक्षिणायन, शरदृतु, आश्विन-शुक्लपक्ष

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा दिनमें ३।२६ बजेतक | गुरु | चित्रा रात्रिमें १२।६ बजेतक | ७ अक्टू० | **शारदीयनवरात्र प्रारम्भ, शैलपुत्रीदेवी-दर्शन, तुलाराशि** दिनमें १२।४० बजे, **महाराज अग्रसेन-जयन्ती, मातामहश्राद्ध।** |
| द्वितीया ,, १।२७ बजेतक | शुक्र | स्वाती ,, १०।४४ बजेतक | ८ ,, | **ब्रह्मचारिणीदेवी-दर्शन।** |
| तृतीया ,, ११।१४ बजेतक | शनि | विशाखा ,, ९।११ बजेतक | ९ ,, | **भद्रा** रात्रिमें १०।३ बजेसे, **वृश्चिकराशि** दिनमें ३।३४ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रघण्टादेवी-दर्शन।** |
| चतुर्थी ,, ८।५२ बजेतक | रवि | अनुराधा ,, ७।३२ बजेतक | १० ,, | **भद्रा** दिनमें ८।५२ बजेतक, **कूष्माण्डादेवी-दर्शन, मूल** रात्रिमें ७।३२ बजेसे। |
| पंचमी प्रात: ६।२७ बजेतक | सोम | ज्येष्ठा सायं ५।५१ बजेतक | ११ ,, | **धनुराशि** सायं ५।५१ बजेसे, **स्कन्दमाता** व **कात्यायनीदेवी-दर्शन, चित्राका सूर्य** दिनमें १०।१७ बजे। |
| सप्तमी रात्रिमें १।४८ बजेतक | मंगल | मूल ,, ४।१५ बजेतक | १२ ,, | **भद्रा** रात्रिमें १।४८ बजेसे, **कालरात्रिदेवी-दर्शन, मूल** सायं ४।१५ बजेतक। |
| अष्टमी ,, ११।४१ बजेतक | बुध | पू०षा० दिनमें २।४८ बजेतक | १३ ,, | **श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, भद्रा** दिनमें १२।४४ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिमें ८।२९ बजेसे, **महागौरीदेवी-दर्शन, महानिशापूजन।** |
| नवमी ,, ९।५१ बजेतक | गुरु | उ०षा० ,, १।३४ बजेतक | १४ ,, | **श्रीदुर्गानवमी, सिद्धिदात्रीदेवी-दर्शन।** |
| दशमी ,, ८।२१ बजेतक | शुक्र | श्रवण ,, १२।४१ बजेतक | १५ ,, | **कुम्भराशि** रात्रिमें १२।२३ बजेसे, **विजयादशमी, पंचकारम्भ** रात्रिमें १२।२३ बजे। |
| एकादशी ,, ७।१३ बजेतक | शनि | धनिष्ठा ,, १२।५ बजेतक | १६ ,, | **भद्रा** दिनमें ७।४७ बजेसे रात्रिमें ७।१३ बजेतक, **पापांकुशा एकादशीव्रत** (सबका)। |
| द्वादशी ,, ६।३३ बजेतक | रवि | शतभिषा ,, ११।५७ बजेतक | १७ ,, | **मीनराशि** रात्रिशेष ६।१२ बजे, **तुलासंक्रान्ति** रात्रिमें ३।२७ बजे। |
| त्रयोदशी ,, ६।२३ बजेतक | सोम | पू०भा० ,, १२।१८ बजेतक | १८ ,, | **सोमप्रदोषव्रत।** |
| चतुर्दशी ,, ६।४४ बजेतक | मंगल | उ०भा० ,, १।९ बजेतक | १९ ,, | **भद्रा** रात्रिमें ६।४४ बजेसे, **शरदपूर्णिमा, मूल** दिनमें १।९ बजेसे। |
| पूर्णिमा ,, ७।३६ बजेतक | बुध | रेवती ,, २।३० बजेतक | २० ,, | **भद्रा** प्रात: ७।१० बजेतक, **मेषराशि** दिनमें २।३० बजेसे, **पंचक समाप्त** दिनमें २।३० बजे। **पूर्णिमा, महर्षि वाल्मीकि-जयन्ती।** |

# कृपानुभूति

## माँ नर्मदाकी असीम कृपा

घटना ३० मई, २०१९ ई० की है, ज्येष्ठ माहकी एकादशी तिथि थी। मैं जबलपुरसे डिंडौरी, अपने पतिके साथ वापस लौट रही थी। हम लोग दोपहरके लगभग १ बजे डिंडौरी पहुँचनेवाले थे कि कुछ ऐसा घटित हुआ कि माँ नर्मदाजीके आशीर्वादपर विश्वास किये बिना रहा नहीं जा सकता और इसीलिये मैं इस घटनाक्रमको आपसे साझा कर रही हूँ।

बात शुरू होती है १५ दिन पहलेकी, १५ मई, २०१९ई० को मेरे नये घरमें गृहप्रवेशका पूजन था, जिसके लिये मैं पूजन-सामग्री अपने निज-निवाससे नवीन घरमें पहुँचा रही थी। इन्हीं सामग्रियोंमेंसे एक थी गायके कच्चे दूधसे भरी लगभग आधा लीटरकी बोतल, जो कि पंचामृतहेतु भेजी गयी थी, परंतु वह बोतल उस समय गाड़ीमें ही कहीं खो गयी थी। व्यस्तताके कारण उस समय उस बोतलका ध्यान भी नहीं रहा तथा पूजनके समय जब दूधकी आवश्यकता पड़ी, तब दूधकी याद आयी, परंतु खोजनेपर जब वह बोतल नहीं मिली तो उस समय अन्य व्यवस्था कर ली गयी और वह कच्चे दूधकी बोतल विस्मृत हो गयी।

फिर कुछ दिन बाद हम जबलपुर गये और अगले दिन सुबह लगभग १० बजे वापस डिंडौरीके लिये निकले। वापसीके समय सब्जी वगैरह कुछ अन्य आवश्यक सामानके साथ वहाँसे दूध (पकाकर) रखकर आये। जब हम डिंडौरी पहुँचानेवाले थे, तभी अकस्मात् ही वही कच्चे दूधकी बोतल, जो १५ दिन पहले पूजनके लिये भेजी गयी थी और खो गयी थी, मिल गयी। जब उसको खोलकर देखा गया तो पाया कि वह दूध इतने दिनोंमें न ही फटा और न ही उसमेंसे किसी प्रकारकी महक आ रही थी, जबकि जो दूध मैंने सुबह पकाकर रखा था, वह ज्येष्ठ माहकी अत्यधिक गर्मीकी वजहसे महक गया था। अब यह सब हमें आश्चर्यचकित करनेके लिये पर्याप्त था।

उस कच्चे दूधके न फटनेपर उसे माँका चमत्कार मानते हुए मैंने उस कच्चे दूधको नर्मदा मैयामें प्रवाहित करनेका निर्णय लिया। जबलपुरसे डिंडौरी आनेमें डिंडोरी नगरसे पहले जोगीटिकरिया नामक स्थलपर नर्मदा मैयाका पुल पड़ता है। उसी पुलपर गाड़ी खड़ी करवाकर मैं रोडके दाहिनी ओरसे (गलत दिशासे) नर्मदाष्टकका पाठ करते हुए दूध प्रवाहित करने लगी। जैसे ही दूध प्रवाहितकर मैं मुड़ी और पूरा मुड़ भी नहीं पायी थी कि तभी एक पिकअप गाड़ी बहुत ही तेजीसे मेरे बगलसे गुजरी। पहले तो मुझे कुछ समझ ही नहीं आया, फिर यकायक पता लगा कि वह गाड़ी मेरे दाहिने हाथकी कोहनीको टक्कर मारते गयी है, चूँकि टक्कर इतनी तेजीसे थी कि हाथ सुन्न हो गया था और जब खून बहने लगा, तब चोटका पता चला। फिर मुझे तुरन्त ही जिला-चिकित्सालय ले जाकर उपचार कराया गया और अगले दिन ही हम अग्रिम उपचारहेतु नागपुर निकल गये।

जब हम सभी घर-परिवारके सदस्य आपसमें बैठकर उपर्युक्त घटनाकी चर्चा कर रहे थे, तभी हमें आभास हुआ कि ये सब मैयाका आशीर्वाद ही था, जो वह चमत्कारिक दूध १५ दिनोंके उपरान्त मिला और वह भी बिना खराब हुए। साथ-ही-साथ मुझे उसे मैयाकी धारामें प्रवाहित करनेकी प्रेरणा मिली, नहीं तो कितनी बड़ी अनहोनी हो सकती थी। हो सकता था कि वही पिकअप हमारी गाड़ीसे टकरा जाती तो और बड़ी अनहोनी हो जाती या यह भी हो सकता था कि वही पिकअप मुझे टक्कर मारती तो मैं पुलसे २५ फीट नीचे नर्मदाजीमें गिर सकती थी। खैर, जो भी हो, नर्मदा मैयाने मेरी तथा मेरे परिवारकी बहुत रक्षा की। मेरी मैयासे बस, यही एक कामना है कि अन्तिम समयतक नर्मदा मैयाका साथ न छूटे।

—**श्रीमती चन्द्रकला दुबे**

# पढ़ो, समझो और करो

( १ )

## अपरिचित रेल अधिकारीकी सद्भावना

बात सन् २०१९ ई० के नवम्बर माहकी है, ८ नवम्बरको हम लोग रिश्तेदारोंके साथ श्रीरामेश्वरम् धामकी तीर्थयात्रापर जा रहे थे। हम कुल १६ लोग थे, जिसमें महिला और ९० सालके बुजुर्ग भी थे। हम लोगोंको भोपाल जंक्शनसे हमसफर एक्सप्रेस पकड़नी थी। एक माह पहले उसमें रिजर्वेशन करा लिया था, वहाँपर गाड़ीका समय रात ३ बजकर ५ मिनट था। चूँकि हम लोगोंको बीना जंक्शन पास पड़ता है, बीनामें हमसफर एक्सप्रेसका स्टापेज नहीं है, प्रदेशमें सिर्फ भोपालमें स्टापेज है, तो हम लोगोंने बीनासे भोपालतक पातालकोट एक्सप्रेसमें रिजर्वेशन करा लिया था, जिसका भोपाल पहुँचना रात १२:३० बजेका है। बीना हम लोग सही समयपर पहुँच गये, पातालकोट एक्सप्रेस भी सही समयपर आ गयी। हमलोग अपनी बोगीमें बैठ गये, गाड़ी सही समयपर चल पड़ी। चार-पाँच स्टेशन चलकर गुलाबगंज स्टेशनपर गाड़ीका इंजन फेल हो गया और गाड़ी वहीं खड़ी हो गयी। आधा घंटे तो इन्तजार किया, पूछा तो पता चला कि दूसरा इंजन आ रहा है, सही जानकारी नहीं मिली तो हम और हमारे एक साथी स्टेशन मास्टरके पास गये और उनको अपनी समस्या बतायी कि हमारे साथ काफी सामान भी है, बुजुर्ग साथमें हैं, हमलोग तीर्थयात्रापर जा रहे हैं, जिस ट्रेनसे हम लोगोंको जाना है, वह बीना पहुँचनेवाली है। कृपया हमारी मदद करें।

स्टेशन मास्टर सज्जन व्यक्ति थे, उन्होंने अपने उच्च अधिकारियोंसे बात की। हमसे कहा, आप लोग चिन्ता न करें, जिस गाड़ीमें आपको भोपालसे बैठना है, हम उसको इसी स्टेशनपर खड़ी करवाते हैं। उन्होंने अपने कर्मचारीको बुलाकर कहा कि सब लोगोंको अच्छी तरह बैठा देना। हम लोगोंसे कहा कि जो भी बोगी सामने आये, उसमें बैठ जाना, फिर अन्दरसे अपनी बोगीमें पहुँच जाना। हम लोग अपना सामान लेकर प्लेटफार्मपर खड़े हो गये, जैसे ही गाड़ी आयी और रुकी, हम लोग S-1 में चढ़ गये, फिर अन्दर ही अन्दर S-7 में पहुँच गये। जो ट्रेन प्रदेशमें एक जगह खड़ी होती है, उस ट्रेनको एक छोटे-से स्टेशनपर खड़ी कराकर रात २ बजे हम लोगोंको बैठाया गया। स्टेशन मास्टर हमारे पूर्व परिचित नहीं थे, फिर भी उन्होंने जो सहायता की, वह अविस्मरणीय है।

—पं० विशालप्रसाद अवस्थी

( २ )

## बछियाका न्याय

बहुत पहलेकी बात है, उस समय सम्पन्न लोग अपने वैभवका प्रदर्शन करनेके लिये हाथी पालते थे। हाथी जब आसपासके गाँवोंमें जाता, तो लोग चर्चा करते थे कि यह अमुक आदमीका हाथी है। उस समय हमारे गाँवके एक दबंग व्यक्तिने सोनपुरके मेलेसे एक हाथी खरीदा था। गाँवका ही एक नौजवान लड़का हाथीका पीलवान था। मालिक तो दबंग था ही, पीलवान भी कम गर्वीला नहीं था। यदा-कदा वह हाथीसे लोगोंकी फसल बर्बाद करा देता था। किसान डरके मारे चुप ही रहते थे। एक बार वह नदीके किनारे पीपलके पेड़से हाथीके चारेके लिये डाली काट रहा था। उस समय पेड़के नीचे एक बछिया घास चर रही थी। पीलवानने एक बड़ी-सी डाली नीचे गिरायी और बछिया उस डालीसे दबकर मर गयी। पीलवानको कोई ग्लानि या दु:ख महसूस नहीं हुआ। उलटे उसे खुशी हुई कि पड़ोसीका नुकसान कर दिया। कमजोर पड़ोसी मन मसोसकर रह गये। इस घटनाके एक महीने पश्चात् पीलवान उसी पेड़पर ऊँचे चढ़कर डालियाँ काट रहा था। अचानक पेड़से उसका पैर फिसला और धड़ामसे जमीनपर आ गिरा। उसके शरीरकी अनेक हड्डियाँ टूट गयीं। वह चलनेलायक नहीं रहा। महीनों बिस्तरपर पड़ा रहा, काफी कष्ट झेलकर उसकी मृत्यु हो गयी। लोगोंने कहा, 'बछियाने न्याय कर दिया।'—उमेश सिंह

( ३ )

## ईश्वरकी दूकान

प्राय: लोग मानते हैं कि धर्मके अनुसार चलनेसे व्यापारमें झूठ बोले बिना नफा नहीं होता।

अमेरिकामें एक किसानने अपनी जमीन बेचकर पासके नगरमें एक छोटी-सी दूकान लगायी—गल्ला, किराना और बिसातखानेकी। दूकानके बाहर उसने एक तख्ती टाँगी, जिसपर लिखा—'ईश्वरकी दयाका भण्डार।' उन शब्दोंके नीचे लिखा था, 'परमात्मा कल जैसा था, आज वैसा ही है और हमेशा एक-सा रहता है।' अर्थात् परमात्मा सदा एकरस रहता है। दूकानके भीतर एक दूसरी तख्ती लगी थी, उसमें लिखा था, 'वस्तुएँ खरीदके भावपर बेची जायँगी, मुनाफा नहीं लेंगे। दूकान-खर्चके लिये आप अपनी इच्छाके अनुसार कुछ पैसा 'पेटी' में डाल सकते हैं।'

नयी दूकान खुली थी—लोग आये, गये, देखा, सुना। किसीने कुछ कहा, किसीने कुछ समझा—झक्की है, उल्लू है, बुद्धू है, अजीब आदमी है, भला ऐसे भी कहीं व्यापार चला है? कुछ दिन ऐसी ही हवा रही। लोग आने लगे, सौदा खरीदने लगे और वापस जाते समय दरवाजेपर लगी 'पेटी'में कुछ पैसा डाल देते। सालभरके बाद हिसाब हुआ तो कई हजारका मुनाफा था।

यह बहुत वर्ष पहलेकी बात है। उसकी दूकान चल निकली और लाखोंका नफा हुआ। दूकान बहुत बड़ी करनी पड़ी और उसमें कई विभाग खोलने पड़े।

चाहे व्यापार हो, चाहे धर्मकी बात हो; झूठ बोलनेसे मनुष्यको एक बार धोखा हो सकता है या ठगा जा सकता है, परंतु हमेशा नहीं ठगा जा सकता, न धोखा हो सकता है। सच बात सच होती है, उससे कभी धोखा नहीं होता। दुनियाकी बातोंसे धोखा हो जाय, लोग धोखा दे दें, किंतु ईश्वरसे कभी धोखा नहीं होता।—**विश्वमित्र वर्मा**

(४)

## 'नन्दू मेरा नहीं, भारत माँका बेटा है'

फील्डमार्शल जनरल के०एम० करिअप्पा भारतके पहले भारतीय कमांडर इन चीफ थे। पाकिस्तानी सेनाके जनरल और बादमें राष्ट्रपति बने अयूब खान आजादीसे पहले उनके अधीनस्थ आफीसर थे। सन् १९६५ के भारत-पाकिस्तान-युद्धके समय जनरल करिअप्पाके पुत्र नन्दा करिअप्पा वायुसेनामें फ्लाइट लेफ्टीनेंट थे और कसूर क्षेत्रमें तैनात थे। २२ सितम्बर १९६५को उन्होंने अपने हन्टरजेट स्क्वाड्रनके साथ उड़ान भरी और शत्रुसेनापर बमबारी शुरू कर दी। उस समय वे पाकिस्तानकी सीमामें प्रवेश कर चुके थे। अचानक एक गोली आकर उनके विमानमें लगी और उसमें आग लग गयी। नन्दाको इस बातका पता नहीं था और वे शत्रुसीमामें आगे ही बढ़ते जा रहे थे। इस प्रकारके खतरेको देखकर उनके स्क्वाड्रनके दूसरे साथीने उन्हें रेडियो संदेश भेजा 'कैरी! तुम्हारे विमानमें आग लग गयी है, जल्दी लैण्ड करो।'

विवश होकर नन्दाको अपना विमान जमीनपर लाना पड़ा, लैण्डिंगके समय उनकी रीढ़की हड्डीमें चोट आ गयी और वे बेहोश हो गये। होशमें आनेपर उन्होंने अपने आपको पाकिस्तानी आर्मीके अफसरोंसे घिरा पाया। उन्होंने नन्दासे नाम पूछा तो इन्होंने अपना नाम फ्लाइट लेफ्टीनेंट नन्दा करिअप्पा बताया। 'करिअप्पा' सुनकर पाकिस्तानी अफसर चौंक पड़े, उन्होंने पूछा, 'क्या तुम जनरल करिअप्पाकी फेमिलीसे हो?'

नन्दाने कोई उत्तर नहीं दिया। परंतु यह बात पाकिस्तानी आर्मीमें जंगलकी आगकी तरह फैल गयी कि युद्धबन्दियोंमें जनरल करिअप्पासे सम्बन्धित भी कोई है। यह बात जब पाकिस्तानके राष्ट्रपति अयूब खानको पता चली तो उन्होंने पाकिस्तान रेडियोके माध्यमसे नन्दाके युद्धबन्दी और सुरक्षित होनेकी घोषणा करायी। स्वयं अयूब खानकी पत्नी भी नन्दासे मिलने गयीं। भारत-स्थित पाकिस्तानके राजदूतने राष्ट्रपति अयूबकी ओरसे जनरल करिअप्पाको टेलीफोनपर संदेश दिया कि उनके बेटेको बिना किसी शर्तके छोड़ दिया जायगा। इसपर जनरल करिअप्पाने जो उत्तर दिया, वह भारतीय शौर्य और देशभक्तिके आदर्शको प्रदर्शित करता है। उन्होंने कहा—'नन्दू मेरा नहीं, भारत माँका बेटा है, मेरे लिये जैसे नन्दू है, वैसे ही भारतके सारे सैनिक। यदि छोड़ना हो तो सारे युद्धबन्दियोंको छोड़ा जाय, नहीं तो जो सजा अन्य युद्धबन्दियोंको दी जा

रही हो, वही सजा नन्दूको भी दी जाय।'

अन्तमें युद्धविरामके बाद ताशकंद-समझौता हुआ, तब नन्दा करिअप्पा सभी युद्धबन्दियोंके साथ भारत वापस लौटे। जनरल करिअप्पाने देशको बेटेसे ऊपर समझा और उससे बिना शर्त समझौतेको भी वे तैयार नहीं थे, ऐसे थे भारतीय सेनाके महानायक जनरल के०एम० करिअप्पा!—**जयदीप सिंह**

(५)

## परदुःखकातरता

विश्वविद्यालयके प्राध्यापक अपने उपकुलपतिसे बहुत हैरान थे। वे विद्यार्थियोंको जो भी दण्ड देते, विद्यार्थी उपकुलपतिके पास जाते और माफ करा लाते। यों अनुशासन कैसे चलेगा? विद्यार्थी उनकी बात कैसे मानेंगे? नहीं, इससे विश्वविद्यालयमें उच्छृंखलता पैदा हो जायगी।

वे काफी दिनतक सहन करते रहे; लेकिन जब उन्होंने देखा कि उपकुलपतिके व्यवहारमें कोई परिवर्तन होनेवाला नहीं है, तब उन्होंने एक दिन उनके पास जाकर शिकायत की। कहा कि 'आप जो करते हैं, उसका प्रभाव संस्थापर अच्छा नहीं पड़ेगा। विद्यार्थी आपको छोड़कर किसी भी अध्यापककी बात नहीं मानेंगे और हमलोगोंका काम करना मुश्किल हो जायगा।'

उपकुलपतिने उनकी बात ध्यानसे सुनी। फिर कुछ गम्भीर होकर बोले—'आप ठीक कहते हैं, पर क्या आप मेरी विवशताके लिये मुझे क्षमा नहीं करेंगे?'

'कैसी विवशता?' एक अध्यापकने पूछा।

उपकुलपति थोड़ी देर मौन रहे, मानो वह वहाँ न हों। फिर कुछ सँभलकर बोले—'अपने बचपनकी एक बात मैं भूल नहीं पाता। जब मैं छोटा था, मेरे पिता नहीं रहे थे। माँ थीं और घरमें बेहद गरीबी थी। मैं स्कूलमें पढ़ता था। फीस उन दिनों नाममात्रकी लगती थी। लेकिन वह भी समयपर नहीं निकल पाती थी। माँ चाहती थी कि मैं ढंगके कपड़े पहनकर स्कूल जाऊँ, पर लाती कहाँसे? एक दिन घरमें साबुनके लिये पैसा न था। मैं मैले कपड़े पहनकर स्कूल चला गया और लज्जासे सिकुड़कर क्लासके एक कोनेमें बैठ गया। अध्यापक आये। उन्होंने क्लासमें एक निगाह डाली। मुझे भी देखा। देखा और उनकी निगाह मुझपर रुक गयी। बोले, 'खड़े हो जाओ।' क्या करता? खड़ा हो गया। बोले—'इतने गंदे कपड़े पहनकर स्कूल आनेमें तुम्हें शर्म नहीं आती? मैं तुमपर आठ आना जुर्माना करता हूँ।'

'आठ आना!' मेरे पैरोंके नीचेसे धरती खिसक गयी। मुझे अपमानकी उतनी चिन्ता न थी, जितनी कि इस बातसे कि जब घरमें साबुनके लिये एक आना पैसा नहीं था तो माँ आठ आने कहाँसे लायेंगी?

कहते-कहते उपकुलपतिकी आँखें भर आयीं। फिर कुछ सुस्थिर होकर बोले—'तबसे मुझे बराबर इस बातका ध्यान रहता है कि विद्यार्थीकी पूरी परिस्थिति जाने बिना यदि हम उसे दण्ड देते हैं तो प्रायः उसके साथ अन्याय कर बैठते हैं, दूसरी बात यह कि जबतक आदमी स्वयं कष्ट नहीं पाता, दूसरेके कष्टको नहीं समझ सकता।'

अध्यापक निरुत्तर होकर चले गये।

यह घटना भारतीय राजनीतिके पण्डित माननीय श्रीनिवास शास्त्रीके बाल्यकालकी है। पं० श्रीनिवास शास्त्रीकी भारतीय राजनीतिमें बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने गाँधीजी और वायसराय लार्ड इरविनमें समझौता कराया था, भारतके राजनीतिक प्रतिनिधिके रूपमें वे दक्षिण अफ्रीका गये, लीग ऑफ नेशन्समें भारतका प्रतिनिधित्व किया, गोपालकृष्ण गोखलेके बाद सर्वेण्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटीके अध्यक्ष बने, लन्दनमें गोलमेज सम्मेलनमें आमन्त्रित हुए, और इतना ही नहीं मद्रास विधानमण्डल, दिल्ली विधानमण्डल, काउन्सिल ऑफ स्टेट और प्रिवी काउन्सिलके भी सदस्य रहे, परंतु शिक्षाके प्रति अधिक झुकावके कारण श्रीशास्त्री राजनीतिसे हट गये और अन्नामलई विश्वविद्यालयके उपकुलपति बन गये।—**यशपाल जैन**

# मनन करने योग्य

## अहंकार करना उचित नहीं

प्राचीन कालकी बात है, शेषनागका एक महाबलवान् पुत्र था। उसका नाम मणिनाग था। उसने भक्तिभावसे भगवान् शंकरकी उपासनाकर गरुड़से अभय होनेका वरदान माँगा। भगवान् शंकरने कहा—'ठीक है, गरुड़से तुम निर्भीक हो जाओ।' तब वह नाग गरुड़से निर्भय हो क्षीरशायी भगवान् विष्णु जहाँ निवास करते हैं, वहाँ क्षीरसागरके समीप विचरण करने लगा। उसकी इस प्रकारकी धृष्टता देखकर गरुड़को बड़ा क्रोध आया और उसने मणिनागको पकड़कर गरुड़पाशमें बाँधकर अपने घरमें बन्द कर दिया।

इधर जब कई दिनतक मणिनाग भगवान् शंकरके दर्शनको नहीं आया, तो नन्दीने भगवान् शंकरसे कहा—'हे देवेश! मणिनाग इस समय नहीं आ रहा है, अवश्य ही उसे गरुड़ने खा लिया होगा या बाँध लिया होगा। यदि ऐसा न होता तो वह क्यों न आता?'

तब नन्दीकी बात सुनकर देवाधिदेव भगवान् शिवने कहा—'नन्दिन्! मणिनाग गरुड़के घरपर बँधा हुआ है, इसलिये शीघ्र ही तुम भगवान् विष्णुके पास जाओ और उनकी स्तुति करो, साथ ही स्वयं मेरी ओरसे कहकर गरुड़द्वारा बाँधे गये उस सर्पको ले आओ।'

अपने स्वामी भगवान् शिवका वचन सुनकर नन्दीने लक्ष्मीपति विष्णुके पास जाकर उनकी स्तुति की और उनसे भगवान् शंकरका सन्देश कहा। भगवान् शंकरका सन्देश और नन्दीकी स्तुति सुनकर नारायण विष्णु बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने गरुड़से कहा—'हे वैनतेय! तुम मेरे कहनेसे मणिनागको बन्धनमुक्तकर नन्दीको सौंप दो।' यह सुनकर गरुड़ क्रोधित हो गये और नन्दीके सामने ही विष्णुको अपशब्द कहने लगे और उन्होंने अहंकारमें आकर यहाँतक कह दिया कि स्वामी अपने भृत्योंको पुरस्कार देते हैं और एक आप हैं, जो मेरे द्वारा प्राप्त वस्तुको भी हर लेते हैं। हे केशव! मेरे बलसे ही आप दैत्योंपर विजय प्राप्त करते हैं और स्वयं 'मैं महाबलवान् हूँ', ऐसी डींग हाँकते हैं।

गरुड़की अहंकारपूर्ण बातें सुनकर भगवान् विष्णुने हँसते हुए कहा—'पक्षिराज! तुम सचमुच मुझे पीठपर ढोते-ढोते दुर्बल हो गये हो। हे खगश्रेष्ठ! तुम्हारे बलसे ही मैं सब असुरोंको जीतता हूँ, जीतूँगा भी। अच्छा, तुम मेरी इस कनिष्ठिका अँगुलीका भार वहन करो।' यह कहकर भगवान् विष्णुने अपनी कनिष्ठिका अँगुली गरुड़के सिरपर रख दी। अँगुलीके रखते ही गरुड़का सिर दबकर कोखमें घुस गया और कोख भी दोनों पैरोंके बीच घुस गयी, उसके समस्त अंग चूर-चूर हो गये।

तब वह अत्यन्त लज्जित, दीन, व्यथासे कराहता हुआ हाथ जोड़कर विनीत भावसे बोला, 'हे जगन्नाथ! मुझ अपराधी भृत्यकी रक्षा करो-रक्षा करो। प्रभो! सम्पूर्ण लोकोंको धारण करनेवाले तो आप ही हैं, हे पुत्रवत्सल! हे जगन्माता! मुझ दीन-दुखी बालककी रक्षा करो' कहकर भगवान्की प्रार्थना की।

यह देखकर करुणामयी भगवती लक्ष्मीने भगवान् जनार्दनसे प्रार्थना की कि प्रभो! गरुड़ आपका सेवक है, उसका अपराध क्षमाकर उसकी रक्षा करें।

भगवान्ने भी गरुड़को विनीत और अहंकाररहित देखकर कहा कि गरुड़! अब तुम भगवान् शंकरके पास जाओ, उनकी कृपादृष्टिसे ही तुम स्वस्थ हो सकोगे। गरुड़ने प्रभुकी आज्ञा स्वीकारकर नन्दी और मणिनागके साथ गर्वरहित हो मन्दगतिसे भगवान् शंकरके दर्शनके लिये प्रस्थान किया। उनका गर्व दूर हो चुका था। भगवान् शंकरका दर्शनकर और उनके कहनेसे गौतमी गंगामें स्नानकर वे पुनः वज्रसदृश देहवाले और वेगवान् हो गये। [ ब्रह्मपुराण ]

# सुभाषित-त्रिवेणी

## गीतामें भोजनके तीन प्रकार

[ Three Types of Food in Gita ]

❀ ***सात्त्विक आहार*** *(Sāttvika Food)*—

**आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।**
**रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥**

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय—ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं।

Foods which promote longevity, intelligence, vigour, health, happiness and cheerfulness, and which are juicy, succulent, substantial and naturally agreeable, are liked by men of Sāttvika nature.

❀ ***राजस आहार*** *(Rājasika Food)*—

**कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।**
**आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥**

कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख, चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ राजस पुरुषको प्रिय होते हैं।

Foods which are bitter, sour, salty, overhot, pungent, dry and burning, and which cause suffering, grief and sickness, are dear to the Rājasika.

❀ ***तामस आहार*** *(Tāmasika Food)*—

**यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।**
**उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥**

जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह भोजन तामस पुरुषको प्रिय होता है।

Food which is ill-cooked or not fully ripe, insipid, putrid, stale and polluted, and which is impure too, is dear to men of Tāmasika disposition.

[ श्रीमद्भगवद्गीता १७।८—१० ]

## गीतामें यज्ञके तीन प्रकार

[ Three types of Sacrifice in Gita ]

❀ ***सात्त्विक यज्ञ*** *(Sāttvika Sacrifice)*—

**अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।**
**यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः॥**

जो शास्त्रविधिसे नियत, यज्ञ करना ही कर्तव्य है—इस प्रकार मनको समाधान करके, फल न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा किया जाता है, वह सात्त्विक है।

The sacrifice which is offered, as ordained by scriptural injunctions, by men who expect no return and who believe that such sacrifices must be performed, is Sāttvika in character.

❀ ***राजस यज्ञ*** *(Rājasika Sacrifice)*—

**अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।**
**इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥**

परंतु हे अर्जुन! केवल दम्भाचरणके लिये अथवा फलको भी दृष्टिमें रखकर जो यज्ञ किया जाता है, उस यज्ञको तू राजस जान।

That sacrifice, however, which is offered for the sake of mere show or even with an eye to its fruit, know it to be Rājasika, Arjuna.

❀ ***तामस यज्ञ*** *(Tāmasika Sacrifice)*—

**विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।**
**श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते॥**

शास्त्रविधिसे हीन, अन्नदानसे रहित, बिना मन्त्रोंके, बिना दक्षिणाके और बिना श्रद्धाके किये जानेवाले यज्ञको तामस यज्ञ कहते हैं।

A sacrifice, which is not in conformity with scriptural injunctions, in which no food is offered, and no sacrificial fees are paid, which is without sacred chant of hymns and devoid of faith, is said to be Tāmasika.

[ श्रीमद्भगवद्गीता १७।११—१३ ]

# साधन-प्रगति-दर्पण ( सितम्बर २०२१ )

*मनुष्य-जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियोंके चक्रमें सभी योनियाँ प्रारब्ध-भोगके लिये हैं; मात्र मनुष्ययोनिमें ही हमें कर्म करनेकी स्वतन्त्रता प्राप्त है। यदि हमने इस दुर्लभ अवसरका लाभ उठाकर आत्मकल्याण अर्थात् परमात्मप्राप्तिका प्रयास नहीं किया तो पता नहीं यह मनुष्य-देह फिर कब मिले। अतएव हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्योंका यथाशक्ति पालन करते हुए आत्मकल्याणके लिये भी सतत प्रयत्नशील रहें।*—सम्पादक

| प्रश्न | प्रथम✿ सप्ताह | द्वितीय✿ सप्ताह | तृतीय✿ सप्ताह | चतुर्थ✿ सप्ताह |
|---|---|---|---|---|
| १-क्या मैंने नित्य प्रात:काल उठकर परमात्माका स्मरण और धन्यवाद किया कि मुझे मानव-शरीरमें रहने और कर्तव्यपालनका सुअवसर प्राप्त हुआ है? | | | | |
| २-क्या मैंने अपने दैनिक पूजा-पाठ, जप और साधनाकी अपनी निर्धारित गतिविधिको तत्परतासे निभाया है? | | | | |
| ३-क्या मैंने अपने व्यवहारमें संयम और अपनी वाणीपर आवश्यक नियन्त्रण रखा है? | | | | |
| ४-क्या इस सप्ताह मैं कुछ स्वाध्याय और सत्संग कर पाया? | | | | |
| ५-क्या नित्य रात्रिमें सोते समय मैंने अपना सारा प्रपंच-भार भगवान्को समर्पितकर सुख-पूर्वक नींद ली है? | | | | |

सामान्य टिप्पणी (यदि कोई हो तो)— . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

✿ साधकोंको इस प्रगति-दर्पणका नित्य अवलोकन करना चाहिये और सप्ताहके अन्तमें अपनी प्रगतिका संक्षिप्त-सा विवरण सामनेके कोष्ठकमें लिख लेना चाहिये। कोई विशेष बात हो तो नीचे लिख लेनी चाहिये। भगवत्कृपा समर्पित साधकोंके कल्याणका मार्ग प्रशस्त कर देती है।

# ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयाल गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

**तत्त्व-चिन्तामणि [ सातों भाग एक साथ ] ( कोड 683 ) ग्रन्थाकार**—अलग-अलग सात भागों तथा विभिन्न शीर्षकोंकी तेरह पुस्तकोंमें पूर्वप्रकाशित सरल एवं व्यावहारिक शिक्षाप्रद लेखोंके इस ग्रन्थाकार संकलनमें गीता-रामायण आदि ग्रन्थोंके सार तत्त्वोंका संग्रह है। यह प्रत्येक घरमें अवश्य रखने एवं उपहारमें देनेयोग्य एक कल्याणकारी ग्रन्थ है। मूल्य ₹200, **( कोड 1650 )** गुजराती मूल्य ₹ 130 में भी।

**साधन-कल्पतरु ( कोड 814 ) ग्रन्थाकार**—इसमें विभिन्न शीर्षकोंमें पूर्वप्रकाशित तेरह पुस्तकोंका ग्रन्थाकारमें प्रकाशन करके एक साथ छापा गया है। मूल्य ₹ 150, इसमें संगृहीत तेरह पुस्तकोंका अलग-अलग भी प्रकाशन उपलब्ध है।

## नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अनमोल प्रकाशन

**भगवच्चर्चा ( कोड 820 ) ग्रन्थाकार**—प्रस्तुत ग्रन्थ नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा कल्याणमें समय-समयपर लिखे गये (पुस्तकाकार छः खण्डोंमें पूर्वप्रकाशित) विभिन्न महत्त्वपूर्ण लेखोंका अनुपम संग्रह है। इसमें ईश्वरप्रेम, भगवत्कृपा, भगवद्दर्शन, विनय, सतियोंका अनुकरणीय चरित्र, भजनकी विशेषता, भगवान् श्रीराम तथा शिव-लीलाओंका वर्णन, दैवी विपत्तियोंसे बचनेके उपाय, सन्त-महिमा, दिनचर्या, श्रीकृष्ण-लीलाके विविध प्रसंग, भक्तिके चमत्कार, पति-पत्नीके कर्तव्य आदि विविध विषयोंपर अत्यन्त ही सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। सचित्र, सजिल्द, मूल्य ₹170, पूर्वप्रकाशित छः खण्डोंके अलग-अलग संस्करण भी उपलब्ध हैं।

## ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजीके कल्याणकारी प्रवचन

**साधन-सुधा-सिन्धु ( कोड 465 ) ग्रन्थाकार**—यह ग्रन्थ ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके द्वारा प्रणीत लगभग 50 पुस्तकोंका ग्रन्थाकार संकलन है। इसमें परमात्मप्राप्तिके अनेक सुगम उपायोंका सरल भाषामें अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ प्रत्येक देश, वेष, भाषा एवं सम्प्रदायके साधकोंके लिये साधनकी उपयोगी एवं मार्गदर्शक सामग्रीसे युक्त है। मूल्य ₹250, **( कोड 1630 )** गुजराती मूल्य ₹ 135 और **( कोड 1473 )** ओड़िआ मूल्य ₹ 200 में भी।

**साधन-सुधा-निधि [ ग्रन्थाकार ] ( कोड 2197 )**—प्रस्तुत पुस्तकमें परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके विक्रम-संवत् 2053 से लेकर 2064 तक प्रकाशित अनेक कल्याणकारी पुस्तकोंका संकलन प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹ 200

## स्वामी करपात्रीजीके दो प्रमुख प्रकाशन

**भक्तिसुधा ( कोड 1982 )**—इसके प्रथम भागमें श्रीकृष्णजन्म, बाललीला, वेणुगीत, चीरहरण, रासलीला तथा द्वितीय भागमें देवोपासना-तत्त्व, गायत्री-तत्त्व आदिका विशद विवेचन है। तृतीय भागमें भगवत्प्राप्ति, नामरूपकी उपयोगिता, मानसी आराधना एवं चतुर्थ भागमें वेदान्तरससार एवं सर्वसिद्धान्त-समन्वय है। मूल्य ₹200

**मार्क्सवाद और रामराज्य—सजिल्द, ( कोड 698 ), पुस्तकाकार**—इसमें स्वामीजीने पाश्चात्त्य दार्शनिकों, राजनीतिज्ञोंकी जीवनी, उनका समय, मत-निरूपण, भारतीय ऋषियोंसे उनकी तुलना, विकासवादका खण्डन, ईश्वरवादका मण्डन, मार्क्सवादका प्रबल शास्त्रीय आलोकमें विरोध तथा न्याय और वेदान्तके सिद्धान्तका विस्तारसे प्रतिपादन किया है। मूल्य ₹180

## नवीन पुस्तकें प्रकाशनकी प्रक्रियामें

| | | |
|---|---|---|
| 2271 श्रीमद्भगवद्गीता श्लोकार्थ सहित (चार रंगोंमें) (मराठी) | 2273 अध्यात्मरामायण (नेपाली) | 2276 कूर्मपुराण (गुजराती) |
| 2272 गीता-माहात्म्यसहित (नेपाली) | 2274 श्रीचैतन्य भागवत (बँगला) | 2277 गीता-साधक-संजीवनी (असमिया) |
| | 2275 ब्रह्मचर्य विज्ञान (बँगला) | |

प्र० ति० 20-08-2021
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022